।। श्रीमते रामानुजाय नमः।।

वैदिक-वाणी

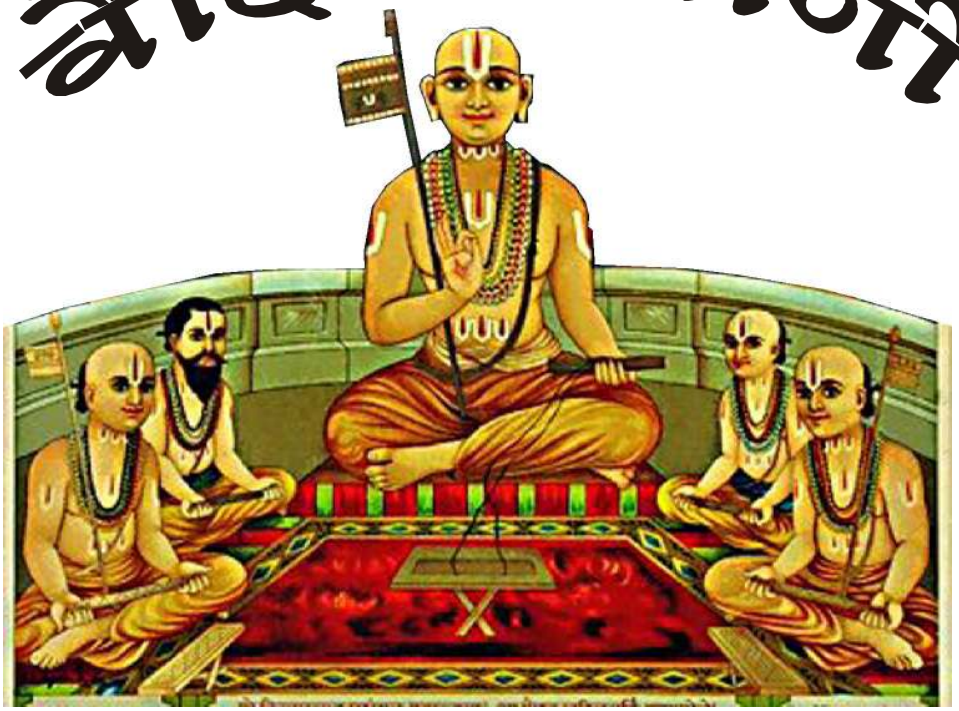

वर्ष- २९ सन्- २०१७ ई०	श्री पराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद् हुलासगंज, जहानाबाद (बिहार)	अंक- २ रामानुजाब्द ९९८ त्रैमासिक प्रकाशन

तव दास्यसुखैकसङ्गिनां भवनेष्वस्त्वपि कीटजन्म मे ।
इतरावसथेषु मा स्म भूदपि मे जन्म चतुर्मुखात्मना ।।

अर्थात् जो केवल आपके दास्यसुख के ही आकाङ्क्षी हैं, उनके घर मैं कीट रूप में जन्म लूँ तो भी अच्छा है; परन्तु अन्य भाव रखने वाले लोगों के घर में मैं चतुर्मुख ब्रह्मा होकर भी जन्म लेना नहीं चाहूँगा ।।

विषयानुक्रमणिका

आश्रम परिवार की ओर से प्रकाशित

क्रम सं०	विषय	पृ० सं०
१.	वैदिक-वाणी	३
२.	साम्प्रदायिक प्रश्नोत्तर स्त्री एवं मन्त्र कहाँ एवं कब?	५
३.	वैकुण्ठ स्तव	६
४.	लक्ष्मीजी को भगवान् से दाहिने या बाय	७
५.	परगत शरणागति	८
६.	मर्यादा पुरुषोत्तम और हिंसा तथा रामरहस्य	१०
७.	सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि....	१७
८.	एक नारायण ही उपास्य क्यों?	२९
९.	आश्रम समाचार	३९
१०.	परपदी स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज की जायन्ती	३९
११.	शेषावतार भाष्यकार स्वामी रामानुजाचार्य जी की जयन्ती	४०
१२.	नृसिंह भगवान् की जयन्ती	४०

●

नियमावली

१. यह पत्रिका त्रैमासिक प्रकाशित होगी।

२. इस पत्रिका का वार्षिक चन्दा (अनुदान) ४५ रुपये तथा आजीवन सदस्यता ५०१ रुपये मात्र हैं।

३. इस पत्रिका में भगवत् प्रेम सम्बन्धी, ज्ञान-भक्ति और प्रपत्ति के भावपूर्ण लेख या कवितायें प्रकाशित हो सकेगी।

४. किसी प्रकार का पत्र व्यवहार निम्नलिखित पते पर किया जा सकता है।

५. लेख आदि किसी भी प्रकार के संशोधन आदि का पूर्ण अधिकार सम्पादक के पास सुरक्षित होगा।

—सम्पादक

वैदिक-वाणी

।। परदुःख द्रवहि सो सन्त पुनीता ।।

इसका भाव चौरासी लाख योनियों से युक्त भगवान् श्रीहरि की लीला से युक्त इस संसार से है। इस संसार के सभी प्राणी दुःखी हैं। सांसारिक सुख-दुःख अनन्त हैं। इसीलिए इस मृत्युलोक को दुःखालय भी कहा जाता है; परन्तु यह सुखदुःख क्षणिक है। इस सांसारिक सुखदुःख का निराश सांसारिक लोग येन-केन-प्रकारेण कर भी लेते हैं; क्योंकि उन्हें इसका अभ्यास हो गया है। इस अभ्यास का कारण तत्त्वज्ञान का अभाव माना जाता है। जिस तत्त्वज्ञान की प्राप्ति अथवा सञ्चय हेतु भगवान् श्रीहरि ने निर्हेतुकी कृपा कर जीव को मानव तन प्रदान किया, उस तत्वज्ञान से मानव सांसारिक चकाचौंध में पड़कर भटक जाता है और संसार के क्षणिक सुखदुःख को स्थायी मानकर बार-बार सुखदुःख का अनुभव करते हुए पुनः जन्मचक्र रूपी महान् दुःख के भँवर में फँस जाता है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर गोस्वामी तुलसी दास जी ने कहा है—

'परदुःख द्रवहि सो सन्त पुनीता' अर्थात् सच्चे अथवा परमसन्त वही है जो परदुःख से द्रवित हो परमकर्त्तव्य पथ से भटके हुए प्राणियों को अपने सदुपदेश द्वारा मानव तन प्राप्ति के मुख्य उद्देश्य का परिज्ञान करा दे। श्रीमद्भागवत् में प्रह्लाद-नारद संवाद क्रम में इसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। ब्रह्मर्षि नारद जी ने इसे सन्तों का मुख्य कर्त्तव्य कहा है। उन्होंने कहा है कि परम सन्त वही है, जो अपने सदुपदेश द्वारा मानव को भगवान् के श्रीचरणों में लगा सर्वविध दे। श्रीमद्भागवत में वर्णित नारद जी के कथन के अनुसार भगवद् स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज परम सन्त थे। आपने अपने जीवन में कभी स्वसुख की भावना नहीं रखी, बल्कि परहित को ही स्व सुख माना। एतदर्थ आपने त्रिविध ताप से परितप्त मानवों की मुक्ति हेतु श्रुति प्रतिपादित श्रीवैष्णव धर्म, परतत्व का वास्तविक स्वरूप आदि विषयों पर समाज में फैलाये जा रहे मिथ्या ज्ञान को दूर करने हेतु आपने अपना जीवन समर्पित कर दिया।

जिस प्रकार शेषावतार यतिराज भगवद् रामानुजाचार्य जी ने यह जानते हुए भी कि गोप्य मूल मन्त्र का अनधिकारी (अपात्र) के समक्ष प्रकट करना उचित नहीं है; क्योंकि मन्त्र के प्रभाव से उस अपात्र का तो कल्याण हो जाता है, किन्तु मन्त्र प्रकट करने वाला दोष का भागी बनता है। यतिराज रामानुजाचार्य जी ने उस महामन्त्र (मूलमन्त्र) का सार्वजनिक रूप से उपदेश कर सहस्रों प्राणियों को सद्मार्ग का अनुयायी बनाते हुए उद्धार कर स्वयं को पाप का भागी बनना पसन्द किया, जिसे कालान्तर में गुरुकृपा से उस दोष से भी उन्हें मुक्ति मिल गयी। इसी भाव को उनके अनुयायी गोस्वामी तुलसी दास जी ने **'परदुःख द्रवहि सो सन्त पुनीता'** द्वारा व्यक्त किया है; क्योंकि सबसे बड़ा दुःख तो बन्धन ही है।

स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज ऐसे ही सन्त थे। लोकाचार्य स्वामी जी का कथन है कि भगवान् के अवतारों (राम-कृष्णादि) के सम्बन्ध में अनर्गल

प्रलाप करना महापाप है। उन्हें प्राकृत तनधारी अर्थात् श्रीहरि के साक्षात् अवतार के अतिरिक्त सामान्य मनुष्य एवं धातु, काष्ठ, पाषाण से निर्मित मूर्ति को सामान्य धातु, पाषाणादि के रूप में देखना महापाप है। श्रीराम जी, श्रीकृष्ण जी में मनुष्य भाव देखना ही जब महापाप है, तब उन्हें हिंसक अथवा मांसाहारी के रूप में देखना अथवा कहना कितना महापाप होगा। ऐसा कुत्सित भाव फैलाने वाले अपने अनर्गल व शास्त्र विरुद्ध तर्कों का सहारा लेकर सनातन श्रीवैष्णव धर्म में दोष सिद्ध करने का प्रयास करते हुए अपनी विद्वता समाज में फैलाने का प्रयास करते थे या हैं। जिससे सामान्य मानव भ्रम में पड़ जाता था।

भगवद् श्रीस्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज ने इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखकर भ्रमित समाज से भ्रम दूर करने के लिए सीता राम परिचय, हिंसा और राम, रामरहस्य, मानस शङ्का समाधन आदि पुस्तकों का प्रणयन किया। इसी प्रकार परतत्त्व विषयक भ्रम को दूर करने, सनातन धर्म श्रीवैष्णव धर्म ही है जो सभी सद्मार्गी जनों के अनुशरण योग्य है एवं आर्ष ग्रन्थों में यत्र-तत्र गूढार्थक शब्दों का भाव प्रकाशन हेतु रामायणादि के कतिपय विशेष स्थलों का स्पष्टीकरण हेतु कुल १६ पुस्तकों का प्रणयन किया है—

१. अर्चागुणगान।
२. स्वामी राजेन्द्र सूरिजी महाराज की सङ्क्षिप्त जीवनी (प्रथम खण्ड)।
३. साम्प्रदायिक प्रश्नोत्तर स्त्री एवं मन्त्र (स्वामी राजेन्द्र सूरिजी महाराज की जीवनी–द्वितीय खण्ड)।
४. मर्यादा पुरुषोत्तम राम और हिंसा तथा रामरहस्य (स्वामी राजेन्द्र सूरिजी महाराज की जीवनी–तृतीय खण्ड)।
५. महाप्रयाण (स्वामी राजेन्द्र सूरिजी महाराज की जीवनी–चतुर्थ खण्ड)।
६. श्रीसीताराम परिचय व मानस शङ्का समाधान।
७. एक नारायण ही उपास्य क्यों?
८. ध्रुव प्रह्लाद चरित्र।
९. मित्र सुदामा-कृष्ण।
१०. ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक धारण।
११. नाम माहात्म्य।
१२. श्रीकृष्ण जन्मोत्सव।
१३. सम्पत् में विपत् दीनता में राम।
१४. अर्चिरादिमार्ग।
१५. देवतान्तरों की आराधना क्यों नहीं?

भगवद् स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी द्वारा रचित उपरोक्त पुस्तकों पर गहन अध्ययन करने वाले भगवद् पराङ्कुशाचार्य जी महाराज के अनन्य शिष्य श्रीकृष्णाचारी (इंजिनियर साहब) जी ने शोध किया है। वर्तमान स्वामी जी (परमपूज्य श्रीस्वामी रङ्गरामानुजाचार्य जी) महाराज ने इंजिनियर साहब के इस कार्य को जन सामान्य तक उपलब्ध कराकर श्रीवैष्णवों को लाभान्वित करने हेतु वैदिक-वाणी में प्रकाशित कराने का निर्णय लिया। गत अङ्क में रामायण (मानस) के अनेक प्रसङ्गों का प्रकाशन किया गया था। वर्तमान अङ्क में भी श्री इंजिनियर (श्रीकृष्णाचारी) जी के शोध का कुछ भाग श्रीवैष्णवों के सेवार्थ इस आशा और विश्वास के साथ प्रकाशित किया जा रहा है कि वे इसका अध्ययन कर अपना ज्ञान और सुदृढ़ करते हुए अन्य का भी भ्रम निवारण करने में सक्षम होंगे।

साम्प्रदायिक प्रश्नोत्तर स्त्री एवं मन्त्र कहाँ एवं कब?

(स्वामी राजेन्द्र सूरिजी महाराज की जीवनी 'द्वितीय खण्ड')

(पुस्तक का सार 60 पृष्ठीय तृतीय संस्करण पर आधारित है, जो श्रीपराङ्कुश प्रेस हुलासगंज से ई0सन् 2005 का प्रकाशन है। इस पुस्तक के अध्याय हैं–'स्त्री एवं मन्त्र', 'वैकुण्ठ स्तव', 'लक्ष्मीजी को भगवान् से दाहिने या बायें' 'परगत शरणागति'।)

स्त्री एवं मन्त्र

दूसरी बार यात्रा से लौटने पर परमहंस स्वामी जी तरेत में विराज रहे थे। एक दिन अमरूद के बगीचा में सत्सङ्ग चल रहा था। खजूरी निवासी पण्डित बालमुकुन्द शर्माजी ने पूछा—**'पतिरेको गुरुः स्त्रीनाम्'** अर्थात् स्त्री के लिये उसका पति ही गुरु है तब उन लोगों को मन्त्र की दीक्षा क्यों दी जाती है? परमहंस स्वामी जी ने सम्यक् उत्तर देते हुए यह बताया कि मन्त्र की आवश्यकता सभी कुमारी या सौभाग्यवती या विधवा को है एवं उनकी दीक्षा उचित है। उदाहरण स्वरूप पति पत्नी के साथ भगवत् उपासना करते हैं तथा गुरु मन्त्र का जाप करते हैं। द्रोण वसु तथा धरा जो नन्द यशोदा बनकर आये। मनु शतरूपा दशरथ कौसल्या बनकर आये। ये सभी भगवत आराधना में प्रवीण थे। व्रज की गोपियाँ, पार्वती की तपस्या, सीताजी का गौरी पूजन, रुक्मिणी का देवी पूजन, कालिन्दी का विष्णु रूपी कृष्ण को पति बनाने की साधना ये सब ध्यातव्य उदाहरण हैं। पद्मपुराण की कथा है कि कैलास पर्वत पर शिव पार्वती तुलसी लगाकर भगवद् पूजन करते थे। एक बार पार्वती जी को विष्णुसहस्रनाम के पाठ में विलम्ब होने पर शिवजी ने बताया—

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने।।

सहस नाम सम सुनि शिववानी।
जपी जेई पिय संग भवानी।।

(मानस, बालकाण्ड १८.३)

भगवान् राम सीताजी के साथ अभिषेक की पूर्व सन्ध्या पर साथ-साथ नारायण की पूजा किये हैं—**'सह पत्न्या विशाल्याक्ष्या नारायणमुपागतम्'** (वाल्मीकि अयो० ६.१)। देवहूति ने कर्दम मुनि से कहा कि जिस देह से भगवत्पूजा सेवा नहीं हुई वह मृतक तुल्य है—

नेह यत् कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते।
न तीर्थपदसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः।।

(भा० ३.२३.५६)

गर्भवती के नियम बताते गये हैं कि गौ ब्राह्मण तथा भगवान् अच्युत की पूजा करे। कयाधु को इन्द्र नहीं मार सके। उसने नारद जी की सेवा की। मथुरा के यज्ञरत ब्राह्मणों की पत्नियों ने भगवान् की पूजा की। इसी तरह से विधवा के लिये भी विधान है। शबरी को भगवान् ने कहा—**'मानउ एक भक्ति कर नाता'** (मानस अरण्य ३४.२)।

गीता में भगवान् ने कहा है—**'मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य.....स्त्रियाः वैश्यः तथा शूद्राः ते अपि यान्ति परां गतिम्'** (९.३२)। स्त्री तथा अन्य पाप योनि वाले मेरी शरण में कल्याण प्राप्त करते हैं। धर्म के दो विभाग हैं–सामान्य तथा विशेष। विशेष

में स्त्री-पुरुष दोनों को समान अधिकार प्राप्त है। भगवद् आराधना विशेष धर्म है। विवाह के समय सप्तपदी तथा बायें भाग में पत्नी को बैठाते समय पति प्रतिज्ञा करता है कि हम सभी श्रेष्ठ कर्मों में तुमको साथ रखेंगे। भगवत्सेवा से श्रेष्ठ कर्म और क्या हो सकता है। विवाह के समय वर विष्णु के रूप में तथा कन्या लक्ष्मी के रूप में रहती है। वालि एवं रावण ने पत्नी की नेक सलाह ठुकरा कर जीवन हानि कर बैठे। लक्ष्मी जी जयन्त की तरह अन्य जीव को भी भगवान् से क्षमा कराती हैं।

केरल की राजधानी में अनन्त भगवान् की मन्दिर है जो पद्मनाभ स्वामी का मन्दिर कहा जाता है। यहाँ कौण्डिन्य मुनि के वंशज भगवान् की आराधना करते हैं। कथा है कि सुमन्त की कन्या बचपन से ही अनन्त भगवान् का व्रत करती थी। कौण्डिन्य मुनि से विवाह के बाद मुनि ने अनन्त सूत्र को आग में डाल दिया। सर्वनाश हुआ। पत्नी के फटकारने पर मुनि ने अनन्त की आराधना कर कल्याणभाजन बने। तुलसीदास जी भी पत्नी की डाँट पर ही भगवतानुरागी हुए।

पुस्तक के पृष्ठ २२ से ३२ तक विभिन्न स्मृतियों के ४६ उद्धरण द्रष्टव्य हैं। विस्तार भय से यहाँ कुछ ही दिये जा रहे हैं—

उद्वाहसमये स्त्रीणां पुनांश्चैवोपनयने।
चक्रादिधारणं प्रोक्तं मन्त्रैः पञ्चायुधस्तथा।।

(पराशर स्मृति १.५.६)

अर्थात् स्त्रियों को विवाह संस्कार और पुरुषों को उपनयन के पूर्व भगवद्भक्त दीक्षा गुरु से पञ्च-संस्कार पूर्वक दीक्षित होना चाहिये। हारीत स्मृति में–**'आश्रमाणां चतुर्णाञ्च स्त्रीणां च श्रुतिचोदनात्...'**। चारों आश्रम के स्त्री तथा पुरुष को विधिपूर्वक शङ्ख-चक्राङ्कित होकर दीक्षित होने की आज्ञा है—**'नारि वा पुरुषो वापि प्रपद्ये शरणं हरिः'**।

परमहंस स्वामी जी ने उपसंहार में कहा है कि 'पतिरेको गुरुः स्त्रीनाम्' में गुरु शब्द पूजनीय के लिये प्रयुक्त हुआ है न कि दीक्षा गुरु के लिये। दीक्षा गुरु की नितान्त आवश्यकता है। यह काम कोई भी भगवद्परायण पति हो या भाई हो, पिता हो या श्वसुर हो या गुरु हो कर सकता है। परमहंस स्वामी जी के सारगर्भित व्याख्यान से बालमुकुन्द शर्मा की आँखें खुल गयीं तथा श्रीचरणों पर नतमस्तक होकर उन्होंने क्षमा माँगी।

●

वैकुण्ठ स्तव

(सामान्यतया वैष्णव परम्परा में वैकुण्ठ स्तव नाम से दो रचना उपलब्ध है। एक श्रीकुरेश स्वामी द्वारा रचित वैकुण्ठ स्तव जिसमें 101 श्लोक हैं। दूसरी श्रीरामानुज स्वामी के परवर्ती किसी पूर्वाचार्य द्वारा रचित है जिसमें 10 श्लोक हैं। कुछ सुविज्ञ श्रीवैष्णवों की मान्यता है कि यह लघु रचना फुटकर श्लोकों का संग्रह है जो विभिन्न समय में विभिन्न आचार्य की श्रीसूक्ति है और इसी लघु 'वैकुण्ठ स्तव' का अर्थ इस पुस्तक के पुष्ठ 33 से 36 तक में स्वान्तः सुखाय द्रष्टव्य है।)

वैष्णवजन के नित्यानुसंधान में प्रयुक्त अतिप्रिय प्रथम दो श्लोक हैं—

कदा मायापारे विशदविरजापारसरसि
परे श्रीवैकुण्ठे परमरुचिरे हेम नगरे।
महारम्ये हर्म्ये वरमणिमये मण्डपवरे
समासीनं शेषे तव परिचरेयं पदयुगम्।।१

हे भगवन्! वह समय कब आयेगा जब प्रकृति मण्डल आवरण से परे अति विस्तृत विरजा नदी के पार आरंगहद सरोवर से परे चित्रविचित्र मणियों से

जटित परम मनोहर सुवर्णपुरी श्रीवैकुण्ठ महानगर में अत्यन्त रमणीय सर्वोच्च स्थान श्रेष्ठमणियों से प्रकाशित रत्नमणि मण्डप में सहस्त्र फणयुक्त शेष शय्या पर नित्यमुक्तों से सम्मिलित होकर सुख से बैठे हुए आपके दोनों चरणकमलों की परिचर्या मैं करूँगा।

महासिन्धोः नीरे विगतकलुषो दिव्यगुणको
हरे सद्गात्रोऽमानव परिसरेऽलङ्कृततनुः ।
भवेयं संश्लाघ्योऽमरनिकर संमानित भवन्
कदाहं संरूढो वरगरुडयाने समचरम् ।।२

हे हरे! कब वह समय आवेगा जब मैं लीला-विभूति से छूटकर विरजा नदी के जल स्पर्श से सूक्ष्म प्रकृति एवं सूक्ष्म वासना रहित दिव्यगुण होकर आपके दिव्य विग्रह अमानव भगवान् की सन्निधि में दिव्य वस्त्र एवं आभूषण से अलङ्कृत होकर नित्यमुक्तों से सम्मानित गरुड़यान से आपके चरणों में पहुँचूँगा।

आगे के श्लोक ३ में कल्पवृक्षों से सुशोभित वैकुण्ठ दर्शन की अभिलाषा का उल्लेख है। श्लोक ४ एवं ५ में वैकुण्ठ में विराजने वाले श्रीदेवी भू-देवी एवं नीलादेवी के साथ शेषासन पर विराजित नित्यमुक्तों से सुसेवित स्वयंप्रकाशित आपकी सन्निधि के दर्शन की चाह है। श्लोक ६ में भगवान् के दिव्यगुणों का तथा सामवेद का गान करते हुए आनन्द का भाजन बनने की मनसा का चित्रण है। श्लोक ८ में ब्रह्मादि से पूजित भगवान् के नित्य नवीन चरण कमल को अपने मस्तक पर धारण करने की अभिलाषा है। श्लोक ९ में भगवान् के भक्तों की सेवा के अवसर की प्राप्ति की चिरकामना की अभिव्यक्ति है। श्लोक १० से **'भगवान् के चरणों के प्रतिनिधि श्रीरामानुज का प्राप्त होना भगवान् की कृपा का ही फल है'** की कृतज्ञता का उद्घोष है।

न कामये ह्यत्र परत्र भोगे न चात्मभोगे प्रवणो भवेयम् ।
विहाय सर्वं हि विरोधिवर्गं त्वद्दासदास्यं सततं भजेयम् ।।९

न मे जगन्नाथ विना दयाया त्वदङ्घ्रि रामानुजपादपङ्कजम् ।
त्वयैव दत्तं करुणैकसिन्धो त्वमेवमेनं किल यां कुरुष्व ।।१०

वैकुण्ठ स्तव अध्याय के उपसंहार में विभिन्न सन्निधियों के दर्शन के समय वैष्णव परम्परा में सम्यक् शरणागति भाव में लीन रहने का उल्लेख है। श्रीशठकोप स्वामी के दर्शन के समय उनके दर्शन से भगवान् के चरणारविन्द की प्राप्ति के भाव में रहना है। श्रीरामानुज स्वामी के दर्शन के समय उनके दर्शन से श्री शठकोप स्वामी के चरणारविन्द की प्राप्ति के भाव में रहना है। श्रीवरवरमुनि स्वामी के दर्शन के समय उनके दर्शन से श्री रामानुज स्वामी के चरणारविन्द की प्राप्ति के भाव में रहना है। अपने स्वयं के गुरु के दर्शन के समय उनके दर्शन से श्रीवरवरमुनि स्वामी के चरणारविन्द की प्राप्ति के भाव में रहना है।

लक्ष्मीजी को भगवान् से दाहिने या बायें

यह प्रश्न के रूप में देवकुली निवासी भक्तिसार जी ने एकबार परमहंस स्वामी जी से पूछा था। शास्त्रों में दोनों ओर रहने का प्रमाण है। भगवान् भक्त के अधीन रहते हैं। देवता या मनुष्य की पत्नी प्रायः पति के बायें रहती हैं। **'सीतासमारोपित वामभागम्'** (मानस, अयोध्या का श्लो २) **'जनकवाम दिशि सोह सुनयना'** (बाल० ३२३.२) आदि। कुल ४६ उद्धरण से विभिन्न स्थितियों के स्वरूपों का वर्णन है। लक्ष्मी जी भगवान् के दोनों ओर पायी जाती हैं। वैष्णव मन्दिरों में लक्ष्मी जी प्रायः अकेली रहने पर भगवान् के दायें अर्थात् दर्शनार्थी के बायें रहती हैं। इसीलिये यह विधान

है कि दर्शनार्थी भक्त सामने से साष्टाङ्ग प्रणान न कर अपनी ओर से करे जिससे कि माता लक्ष्मी जी उसको स्वीकार करते हुए भगवान् को समर्पित कर दें।

उद्धरण ३४ बहुत महत्वपूर्ण है। यह वैष्णव सम्प्रदाय के एक जटिल प्रश्न का समाधान करता है। (विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त है कि जीव, जगत् एवं ईश्वर तीनों शाश्वत हैं। समस्त जीव एवं सम्पूर्ण जगत् या सृष्टि ईश्वर के अङ्ग प्रसाधन हैं। जीव मुक्त एवं बद्ध श्रेणी में रखे गये हैं। मुक्त जीव वैकुण्ठ में भगवान् की सेवा में रहते हैं। बद्ध संसार जाल में जन्म-मृत्यु के अधीन पड़ा रहता है।) अब प्रश्न है कि क्या लक्ष्मी जी भी जीव कोटि में हैं। यहाँ यह स्पष्ट कहा गया है कि शेष जी जीव कोटि में हैं, परन्तु लक्ष्मी जी जीव कोटि से उत्कृष्ट विलक्षण ईश्वर कोटि में हैं। लक्ष्मी जी को भगवान् अपने दायें वक्षस्थल पर रखते हैं। भगवान् की पूजा की दो प्रचलित विधि है–पाञ्चरात्र एवं वैखानस। पहला नारद जी ने दिया है तथा दूसरा ब्रह्मा जी का है। पाञ्चरात्र संहिता में कहा है—**'दक्षिणे च महालक्ष्मीस्तस्य पार्श्वे द्वयेऽपि च'**। अर्थात् भगवान् के दाहिने महालक्ष्मी हैं तथा दोनों समीपस्थ बगल में भू-देवी एवं नीला देवी हैं।

शास्त्रों का विधान है कि सीमन्त संस्कार विवाह, यज्ञ, होम में पत्नी दाहिने रहे तथा अभिषेक या आशीर्वाद में पति के बायें रहे। सामान्य एवं विशेष शास्त्रों का विधान हैं। सामान्य में पत्नी बायें रहती हैं; परन्तु विशेष में दायें रहती हैं।

परगत शरणागति

एक समय परमहंस स्वामी जी वैदराबाद अरवल ठाकुरवारी में विराज रहे थे। श्रीचरणों की सेवा में गरुड़ध्वज जी एवं कमलनयन जी थे। गरुड़ध्वज जी ने परमहंस स्वामी जी से पूछा कि भगवत्कृपा के लक्षण क्या है। परमहंस स्वामी जी ने सारगर्भित व्याख्या की। सारांश है कि **'जब द्रवहि दीनदयालु राघव साधु सङ्गति पाइये'** (विनयपत्रिका १३६.१०), **'बिनु हरि कृपा मिलहि नहीं सन्ता'** (सु०का० ६.४), **'सत्सङ्गति संसृति कर अन्ता'** (उ०का० ४४.३)। सन्तों ने अजामिल के पुत्र का नाम नारायण रखा था। अजामिल का कल्याण हुआ। वाल्मीकि एवं नारद भी सन्तकृपाभाजन बनकर ही श्रेयस को प्राप्त कर सके थे। रामजी के कृपापात्र वृक्षादि भी थे, वे ज्ञानसम्पन्न होकर उनकी सेवा में लग गये।

सरिता बन गिरि अवघट घाटा।
पति पहिचानी देहि बर बाटा।।

(अरण्य० ६.२)

सब तरु फलै राम हित लागी। (लङ्का० ४.३)

भगवान् भक्ति, ज्ञान, कर्म से मिलते हैं। शुभ कर्म से भक्ति होती है और भगवान् मिलते हैं। पाप से नरक मिलता है; परन्तु **'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'** (गीता २.४७) के अनुसार कर्म का फल भगवान् की निर्हेतुकी कृपा से मिलता है। भगवान् को शरण में रखने का गुण है जिसे शरण्य गुण कहते हैं। जैसे जयन्त की घटना। सागर में शरण्य गुण नहीं होने से वह भगवान् राम का कोप भाजन बना।

भगवान् दया गुण से पुनः सृष्टि करते हैं—

यस्मिन् यतो येन च यस्य यस्मै
यद् यो यथा कुरुते कार्यते च।
परावरेषां परमं प्राक् प्रसिद्धं
तद् ब्रह्म तद्धेतुरनन्यदेकम्।।

(भा० ६.४.३०)।

भगवान् के नाम लेने से ही सद्गति होती है।

अजामिल का उदाहरण—

नामोच्चारणमहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ।
अजामिलोऽपि येनैव मृत्युपाशाद् मुच्यते ।।
(भा० ६.३.२३)

'लोकवत्तु लीला कैवल्यम्' (ब्र०सू० २.१.३३)।

महाभारत में दूत बनना, सारथी बनना, गीता का उपदेश करना–सब निर्हेतुकी कृपा है—

यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद् यद् यथा यदा ।
स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषो परौ ।।
(भा० १०.८५.४)

'हेतु रहित जग जुग उपकारी' (उ०का० ४६.३)

'अस प्रभु दीनबन्धु हरि कारण रहित कृपाल' ।
(बा०का० २११)

'कबहुँ कि करि करुना नर देही' । (उ०का० ४३.३)

भगवान् विना सेवा के ही द्रवित होते हैं—

यस्मिन्यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद्
यस्मै यदा यदुत यस्त्वपरः परो वा ।
भावः करोति विकरोति पृथक् स्वभावः
सञ्चोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम् ।।
(भा० ७.९.२०)

भगवान् की कृपा से ही अपना सर्वस्व भगवान् के श्रीचरणों में समर्पित कर दुस्तर माया को पार करता है—**'येषां स एव भगवान् दययेदन्तः सर्वात्मनाऽऽश्रितपदो...। ते दुस्तरामतितरन्ति च देवमायां नैषां ममाहमिति धीः श्वश्रृगालभक्ष्ये'** (भा २.७.४२)।

गर्भ में भगवान् ही शुद्ध ज्ञान देते हैं—**'.... तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम्'** (भा० ३.३१.९)। **'....युक्तया कया महदनुग्रहमन्तरेण'** (भा० ३.३१.१५)। परमात्मा जीवात्मा को स्वयं ज्ञान देकर कहवाते हैं कि आपके अनुग्रह विना इस बन्धन से छूटने का दूसरा कोई उपाय नहीं है। बद्रिकाश्रम में भगवान् स्वयं भी तपस्या करते हैं तथा नर को भी मन्त्र देते हैं। सुदामा जी ने भगवान् से द्वारिका में भेंट के बाद कहा है कि मेघ जैसे स्वयं ही जल देता है वैसे ही परमात्मा की कृपा है। **'पर्जन्यवत्तत् स्वयमीक्षमाणे दाशार्हकाणामृषभः सखा मे'** (भा० १०.८१.३४)। माण्डूक उपनिषद् ३.२.३ तथा कठोपनिषद् २.२.२३ में कहा है कि प्रवचन, उत्कृष्ट बुद्धि तथा विद्वता से परमात्मा नहीं मिलते—**नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेघया न बहुश्रुतेन यमेवैष वृणते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनु स्वाम्'** । श्रीवचनभूषण में लोकाचार्य जी ने 'स्वगत' एवं 'परगत' दो तरह की शरणागति बतायी है। पिता से पत्र मिलने पर ही पुत्र का पैतृक धन का अधिकारी होना स्वगत शरणागति है जो स्वयं के उपाय से होती है और यह निष्फल होती है। परगत शरणागति सफल है; क्योंकि परमात्मा से यह निर्हेतुक मिलती है।

'....मामेकं शरणं व्रज' (गी० १८.६६) से भगवान् ने कल्याण करने की प्रतिज्ञा की है। मूर्ख ही उनको उपाय नहीं मानते। हनुमान जी को अन्य बन्धन लगते ही ब्रह्मास्त्र निष्प्रभावी हो गया। रावण के हाथ में कटे धनुष की मूठ बची थी। भगवान् का बाण उस पर बरसता रहा। जब उसने मूठ फेंक दी तो भगवान् ने निहत्थे पर बाण चलाना बन्द कर दिया। वृन्दावन के यज्ञरत ब्राह्मण की पत्नियों पर कृपा तथा मालाकार दर्जी एवं कुब्जा आदि पर निर्हेतुकी कृपा के उदाहरण हैं।

मूलमन्त्र **'ॐ नमो नारायणाय'** का नमः मेरा तेरा के मोह से छुटकारा दिलाता है। भगवान् ही प्रेरक बनकर अपनाते हैं। **'उर प्रेरक रघुवंश विभूषन'** (उ०का० ११२), **'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'** (गी० १८.६१), **हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हो । साधन धाम देव दुर्लभ तनु मोहि कृपा कर दिन्हो'** (विनयपत्रिका १०२)। शुकदेव जी की छाया में वृक्ष भी सचेत रहते थे।

ब्रह्मसूत्र **'तदगुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत्'**

(२.३.३९) के इस गुण के कारण पूतना एवं शिशुपाल को मोक्ष मिला। पुण्य भगवान् को प्रिय है तथा पाप अप्रिय है। भगवान् की कृपा अकारण होती है। भागवत के अनेकों दृष्टान्तों का उद्धरण पुस्तक में द्रष्टव्य है। कुछ एक यहाँ उद्धृत हैं—

यस्मिन् यतो येन च यस्य यस्मै
यद् यो यथा कुरुते कार्यते च।
परावरेषां परमं प्राक् प्रसिद्धं
तद् ब्रह्म तद्धेतुरनन्यदेकम्।।

(भा० ६.४.३०)।

यस्मिन्यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद्
यस्मै यदा यदुत यस्त्वपरः परो वा।
भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः
सञ्चोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम्।।

(भा० ७.९.२०)

यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद् यद् यथा यदा।
स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः।।

(भा० १०.८५.४)

'दातुं नालं वशंगतः' यानी भक्त के देने योग्य जब भगवान् के पास कुछ नही रहता है तब वे भक्त के बस में हो जाते हैं। भगवान् का सर्वस्व भक्त का है तथा भक्त का सर्वस्व भगवान् का है।

मर्यादा पुरुषोत्तम और हिंसा तथा रामरहस्य

(स्वामी राजेन्द्र सूरिजी महाराज की जीवनी 'तृतीय खण्ड')

(वाल्मीकि रामायण के कतिपय श्लोकों के त्रुटिपूर्ण अर्थ वाली कुछ टीकायें उपलब्ध हैं जो भगवान् राम को माँस भक्षण हेतु बनवास काल में जंगली मृगों का शिकारी दर्शाती हैं। आम आदमी भगवान् को हिंसक मानकर मात्र एक मर्यादा पुरुष ही मानता है न कि भगवान्। इस पुस्तक में इसी भ्रम को दूर करते हुए रामजी को भगवान् के अहिंसक करुणाकर मङ्गल स्वरूप से सम्पन्न साक्षात् नारायण का अवतार सिद्ध किया गया है।)

वर्तमान सार सङ्क्षेप सं० २०४३ अर्थात् ई० १९८६ में श्रीपराङ्कुश प्रेस हुलासगंज से प्रकाशित द्वितीय संस्करण पर आधारित है। पुस्तक के पूर्वार्द्ध का विषयवस्तु 'वाल्मीकि रामायण' पर आधारित **'मर्यादा पुरुषोत्तम और हिंसा'** है तथा उत्तरार्द्ध में 'रामचरितमानस' पर आधारित 'रामरहस्य' का वर्णन है। 'रामरहस्य' वाले भाग का एक स्वतन्त्र प्रकाशन सं० २०१६ अर्थात् ई० १९५९ में साधना प्रेस पटना से मुद्रित द्वितीय संस्करण उपलब्ध है जो ज्यादा विस्तृत है तथा विषयसूची एवं शुद्धिपत्र को छोड़कर ७२ पृष्ठों की पुस्तक है। यहाँ उपर्युक्त दोनों पुस्तकों से मिलाकर ही 'रामरहस्य' वाले भाग का सार सङ्क्षेप प्रस्तुत किया गया है। **'मर्यादा पुरुषोत्तम और हिंसा'** वाला भाग हुलासगंज से प्रकाशित ई० १९८६ पर आधारित है।

हुलासगंज से प्रकाशित पूर्वोक्त ई० १९८६ वाली पुस्तक कुल ५६ पृष्ठ की है तथा इसकी विषयसूची है—'दो शब्द' पृ० १, 'भ्रमात्मक शब्दार्थ' पृ० ३, 'प्राग्वक्तव्य' पृ० ५, 'अवतार हेतु' पृ० १०, 'भगवान् श्रीरामजी का कुलधर्म परिचय' पृ० ११, 'परमभागवत नामावली हारीत संहिता' पृ० १२, 'महाभागवत का लक्षण' पृ० १२, 'कौसल्या द्वारा रंगनाथ भगवान् की अनवरत आराधना' पृ० १३, 'मर्यादा पुरुषोत्तम' पृ० १४, 'रामरहस्य' पृ० ३३।

(क) दो शब्द—भगवद् स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज के हैं जिसमें दैवी एवं आसुरी प्रकृति के लक्षण बताये गये हैं—

दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।

मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ।।

(गीता १६.५)

दैवी प्रकृति वालों को रामजी भगवान् दिखते हैं, जबकि आसुरी वाले उन्हें हिंसक एवं प्राकृत मनुष्य देखते हैं। कंस वध के समय भगवान् कृष्ण को लोगों ने अपने संस्कारवश विभिन्न रूपों में देखा था।

शास्त्र के शब्द कल्पद्रुम होते हैं–पुण्यात्मा अमृत माँगते हैं तथा पापी विष। वाल्मीकि रामायण में आये कुछ शब्दों के कई अर्थ हो सकते हैं। प्रसङ्ग एवं मुख्य विषय के अधिनायक के मूल चरित्र के आधार के समरूप ही अर्थ लेना उचित होता है। पुस्तक के प्रारम्भ में ही भ्रमात्मक शब्द की सारणी बनी है और उनके ग्रहण करने योग्य अर्थ निघण्टु, अथर्ववेद, शब्दार्थ कौस्तुभ, मेदिनी, शब्दार्थ पारिजात, भावप्रकाश, अमरकोश आदि की सहायता से दिये गये हैं। ग्राह्य अर्थों के कुछ एक उदाहरण—**'आमिष यानी राजभोग' 'एण यानी ऊन', 'कुक्कुट यानी नागरमोथा', 'गौ यानी चावल', 'छाग यानी निर्मल', 'बलि यानी नैवेद्य', 'वाराह यानी वाराहीकन्द', 'मदिरा यानी आम्रवृक्ष', 'मत्स्य यानी सोमलता', 'मांस यानी फल का गुद्दा भीतरी भाग', 'शृङ्ग यानी जीरा', 'सुरा यानी पञ्चामृत सुन्दर स्वाद वाला'**।

(ख) प्राग्वक्तव्य—इसमें सद्ग्रन्थों के रहस्य समझने के लिये सहृदयता भावुकता एवं तन्मयता से ओतप्रोत रहने की आवश्यकता पर बल दिया गया है—**'पिवत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः** (भा० १.१.३)। वाल्मीकि रामायण का मूलाधार गायत्री के चौबीस अक्षर हैं जिसके प्रतीक में इसमें २४००० श्लोक हैं। इसे गायत्री का भाष्य तथा वेदस्वरूप कहते हैं। वेदवेद्य नारायण के रामजी के स्वरूप में अवतरित होने पर वेद ही रामायण बनकर प्रकट हुए।

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणाः ।।

(वा०रा०, युद्ध० ११६.४३)

बुराई करने वाले का बदला बुराई से नहीं देते। अपने आचार की रक्षा ही चरित्र का अलङ्कार है— **पापानां शुभानां वा वधार्हाणां प्लवङ्गम।**
कार्यं करुणमार्येण न कश्चिन्नापराध्यति ।।

(वा०रा०, युद्ध० ११६.४४)

श्रेष्ठजन पापी वध योग्य अपराधी पर दया करते हैं; क्योंकि ऐसा कोई नहीं है जिसने अपराध न किया हो। ऐसा सीताजी हनुमान जी को समझाती हैं। इसीलिये वाल्मीकि जी ने सीताजी को महान बताया है—**'....सीतायाश्चरितं महत्'** (वा०रा०, बाल० ४.७)। श्रीरामानुज स्वामी ने अपने आचार्य से अठारह बार रामायण पढ़ी। सात्विक ग्रन्थ को सात्विक भाव से ही देखना चाहिये। भगवान् राम को मर्यादापुरुषोत्तम होते हुए मांसभक्षी बताना सर्वथा गलत है। किसी पद्य के अर्थ में प्रसङ्ग अधिकारी एवं पूर्वापर विषयों का समन्वय आवश्यक है। यह ग्रन्थ की उत्तमता, ग्रन्थ, लेखक एवं ग्रन्थ के अधिनायक की उत्तम वृत्ति पर आधारित है। वर्तमान श्वेतवाराह कल्प के पूर्व पद्मकल्प में राजा सत्यव्रत की अञ्जलि से मत्स्यावतार हुआ। सत्यव्रत ही स्वायंभुव मनु हुए। मनु ने ही दशरथ रूप में श्रीरामजी को पुत्र रूप में प्राप्त किया। वाल्मीकि रामायण के रचयिता स्वयं एक तपस्वी थे तथा उनका हृदय करुणापूर्ण था—**'मा निषाद प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः'** (वा०रा०, बाल० २.१५)। पक्षी की हत्या देख उन्होंने एक बहेलिये को शाप दे डाला।

(ग) अवतार हेतु—'गो द्विज धेनु बिप्र हितकारी कृपासिन्धु मानुष तनुधारी' (मानस, सुन्दर० ३८.२), **'प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया'** (गीता ४.६), **'धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे'** (गीता ४.८)। भगवान् एवं लक्ष्मी जी दोनों साथ-

साथ लोक कल्याण करते हैं। **'अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा'** (वा०रा०, सुन्दर० २१.१५)। **'गिरा अर्थ जलबीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न। बन्दौ सीतारामपद जाके परम प्रिय खिन्न'** (मानस, बाल० १८)।

(घ) भगवान् श्रीरामजी का कुलधर्म परिचय—श्रीमन्नारायण से उत्पन्न ब्रह्मा, नारद, वशिष्ठ, नैमिषारण्यवासी शौनकादि महर्षि तथा इक्ष्वाकु कुल के दिलीप आदि चक्राङ्कित श्रीवैष्णव थे। पद्मपुराण, उत्तरकाण्ड ६७ एवं ६५ श्लोक में इसका उल्लेख है—**'एवमुक्त्वा विधातारं....तस्मै मन्त्र ददौ स्वयम्'**।

(च) परमभागवत नामावली हारीत संहिता—

वशिष्ठं वामदेवञ्च व्यासं शौनकमेव च।
मार्कण्डेय चाम्बरीषं दत्तात्रेयं पराशरम्।
भरद्वाजं बलिं भीष्ममुद्धवाक्रूरपूर्वकम्।
गुहं सुतञ्च वाल्मीकं स्वाम्भुवमनुं ध्रुवम्।
नन्दञ्च वसुदेवञ्च दिलीपं दशरथस्तथा।
कौसल्याञ्चैव जनकं भक्ता इत्यादिकं ध्रुवम्।

(छ) महाभागवत का लक्षण—

अर्थपञ्चक तत्वज्ञाः पञ्चसंस्कारसंस्कृताः।
नवभक्तिसमायुक्ता महाभागवता स्मृताः।।
'तापं पुण्ड्रं तथा नाम मन्त्रयागस्तु पञ्चमः'।

(महाभारद्वाज संहिता)

इक्ष्वाकु से लेकर रामजी तक में महाभागवत के सभी लक्षण मिलते हैं।

(ज) कौसल्या द्वारा रङ्गनाथ भगवान् की अनवरत आराधना—

श्रीरङ्गनाथशयिनं सौम्यमिक्ष्वाकुल दैवतम्।
सप्रीत्या प्रददौ तस्मै रामो राजीव लोचनः।।

(पद्मोत्तर खण्ड, अ० २११)

अर्थात् भगवान् राम के कुलदेवता रङ्गनाथ भगवान् थे, श्रीरामजी ने उन्होंने कृतज्ञतावश विभीषण को दे दिया था। कौसल्या जी इनकी पूजा करती थीं—**'प्रभाते त्वकरोत्पूजां विष्णोः पुत्रहितैषिणी'। 'पूजा हेतु कीन्ह पकवाना'** (मानस, बाल० २००.२)।

(झ) मर्यादा पुरुषोत्तम—लोक संग्रह शिष्टाचार के लिए कुल धर्मानुसार भगवान् राम ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाते थे—**'भाले दधानं सितमूर्ध्वपुण्ड्रं पीतश्रियं मध्यविराजमानम्'** (अगस्त्य संहिता)। बालकाल से ही तिलक धारण करते थे–मानस बालकाण्ड **'तिलक ललाट पटल दुतिकारी'** (१४६.२), **'नासा तिलक को वरने पारा'** (१९८.४)। जनकपुरवासियों ने रामजी के माथे पर ऊर्ध्वपुण्ड्रतिलक का उल्लेख किया है—**'तिलक रेख शोभा जनु चांकी'** (२१८.४), **'भाल तिलक श्रमविन्दु सुहाए'** (२३२.२), **'भाल विशाल तिलक झलकाहीं'** (२४२.३)।

भगवान् कुलधर्म के रक्षक थे। नारद जी से जब वाल्मीकि ने सोलह गुण से सम्पन्न पुरुष का परिचय पूछा था तो नारद जी ने कहा था—**'इक्ष्वाकुवंश प्रभवो रामो नाम जनैःश्रुतः'** (वा०रा०, बाल० १.८)।

वाल्मीकि रामायण के अनुसार कुछ लोग रामजी को मांसभक्षी बताने का दुःसाहस करते हैं। वे अज्ञान के गर्त में हैं तथा उन्हें सद्गुरु से रामायण पढ़नी चाहिए। कैकेयी की आज्ञा थी—**'चीराजिन जटाधारी रामोभवतु तापसः'** (वा०रा०, बाल० ११.२६)। कैकेयी के वचनानुसार तपस्वी बनकर रहना है तो फिर मांस खाना तो विरोधाभास है। रामजी का वचन है मुनियों की तरह रहूँगा, फल-मूल खाकर रहूँगा—**'मधुमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम्** (वा०रा०, अयो० २०.२९)। **'आसेवमानो वन्यानि फलं मूलैश्चवर्तयन्'** (वा०रा०, अयो० २०.३१)।

वनगमन के समय रामजी ने प्रतिज्ञा की थी—**'फलानि मूलानि च भक्ष्यन्वने'** (वा०रा०, अयो० ३४.५९)।

ताड़का सुबाहु रावण आदि आसुरी वृत्ति वाले

का वध धर्म की रक्षा है। **'पावन मृग मारहिं जिय जानी'** (मानस बाल० २.४)। विष्णुसहस्रनाम **'पवनः यावनोऽनलः'** की तरह उक्त चौपाई में 'पावन' वाच्य रामजी हैं तथा हिंसक जन्तुओं को दुर्बल जन्तुओं की रक्षा के लिए मारते हैं।

रामजी को पशु पक्षियों से प्रेम था—

हित अनहित पशु पक्षिउ जाना।
बाधक बधिक विलोकि पराहि।।

(मानस, अयो० २६३.२)।

जड़ वस्तु भी रामजी से प्रेम करते हैं—

सरिता सर गिरि औघट घाटा।
पति पहिचानि देहि बर बाटा।।

(मानस, अरण्य० ६.२)

सब फल फलै राम हित लागी।
ऋतु अनऋतु काल गति त्यागी।।

(मानस, लङ्का ४.३)

भगवान् राम ने वन में दशरथ जी को पिण्ड इङ्गुदी फल एवं वैर चूर्ण के मिश्रण से दिया था—**'ऐङ्गुदं बदरीमिश्रं पिण्याकं दर्भसंस्तरे'** (वा०रा०, अयो० १०२.२९); क्योंकि जो व्यक्ति जो खाता है वही अपने इष्टदेव को अर्पित करता है—**'यदन्नः पुरुषो भवति तदान्नास्तस्य देवताः'** (वा०रा०, अयो० १०२.३०)। भगवान् स्वयं शुद्ध वैष्णव धर्म का पालन करते थे, स्वयं भोग लगाकर ही प्रसाद पाते थे—**'भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्ति आत्माकारणात्'** (गीता ३.१३)। भगवान् की कृपा की कमी के कारण ही कोई व्यक्ति उनमें दोष देखता है। **'दिव्यं ददामि ते चक्षुः'** (गीता० ११.८), **'तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई'** (मानस, किष्किन्धा० २०.३), **'सो जानई जेहि देहु जनाई'** (मानस, अयो १२६.२)। शुद्ध सात्विक ज्ञान के लिये भगवान् की कृपा ही परमोपाय है। वाल्मीकि रामायण के निम्नाङ्कित प्रसङ्गों के अर्थ शुद्ध सात्विक भाव से ही समझे जा सकते हैं।

(१) 'मधुमूलफलैर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम्' (वा०रा०, अयो० २०.२९)। यहाँ 'आमिष' का अर्थ राजभोग समझना है। भगवान् माता कौसल्या को वचन देते हैं कि राजभोग सुखादि छोड़कर मुनि की तरह फल, मूल, मधु का सेवन करुँगा।

(२) सुराघट सहस्रेण मांसभूतौदनेन च।
यक्ष्ये त्वां प्रयतां देवि पुरीं पुनरुपागता।।

(वा०रा०, अयो० ५२.८९)

वन के रास्ते गंगा तट पर सीताजी गङ्गा से प्रार्थना करती हैं कि सकुशल अयोध्या लौटने पर आपकी पूजा हजार घड़े पञ्चामृत या देवदुर्लभ प्रसाद तथा मांसभूतौदन यानी तिल लावा दही यव हरिद्रा मिश्रित भात से करूँगी। हारीत वचन है—**'विष्णोर्निवेदत अन्नेन यष्टव्यं देवतान्तरम्'** यानी भगवान् के चढ़े प्रसाद से ही अन्य देवों की पूजा करे। भगवत् प्रसाद देवदुर्लभ है। वैद्यक शब्द सिन्धु के अनुसार **'तिल लाजा दधि यव हरिद्रायुक्त ओदनम्। भूतौदनं सु सम्प्रोक्त गुणाः सर्वे पदार्थवत्'** ब्रह्मसूत्र (२.४.२१) के अनुसार **'मांसादि भौमं यथाशब्दमितरयोश्च'**। भौम अर्थात् पृथ्वी के अन्न से मांस विष्ठा तथा मन का निर्माण होता है उसी तरह शब्दों से भी भिन्न-भिन्न कार्य या अर्थ लिये जाते हैं। मरीचि संहिता में कहा है—**मांसोक्ते पौष्टिकं ग्राह्यम्'** अर्थात् मांस शब्द से फल का गुद्दा अर्थ हुआ।

(३) स्वस्ति देवि तरामि त्वां पारयेत् मे पतिव्रतम्।
यक्ष्ये त्वां गो सहस्रेण सुराघटशतेन च।।

(वा०रा०, अयो० ५५.२०)

यमुना जी से सीताजी प्रार्थना करती हैं कि यदि मेरे पति का व्रत पूरा हुआ अर्थात् बनवास निर्विघ्न पूरा हो जायेगा तब मैं एक हजार गौयें दान करुँगी तथा एक सौ घड़ा पञ्चामृत से पूजा करुँगी।

(४) कोशमात्रं ततो गत्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
बहून्मेध्यान् मृगान्हत्वा चेरतुर्यमुनावने ।।
(वा०रा०, अयो० ५५.३३)

अनन्यता और उसका स्वरूप

सतत एक ही विषय अर्थात् भगवद् विषय भाव बनाये रखने को अनन्यता कहते हैं। ऐसे भक्त अनन्य भक्त कहे जाते हैं। भगवान् ने गीता में कहा है—**'अभ्यासयोगायुक्तेन चेतसा नान्यगामिना'** (गी० ८.८), **'अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः'** (गी० ८.१४), **'...भक्त्या लभ्यः तु अनन्यया'** (८.२२), **'भजन्ति अनन्य मनसः...'** (९.१३), **'अनन्याः चिन्तयन्तः माम्...'** (९.२२), **'भक्त्या तु अनन्या शक्यः...'** (११.५४), **'.... अनन्येनैव योगेन....'** (१२.६), **'मयि च अनन्य-योगेन...'** (१३.११)। भगवान् ने बार बार अनन्यता की महत्ता बताते हुए कहा है—**'न अहम् वेदैः तपसा न दानेन....'** (११.५३)। वेद पढ़ने, तपस्या करने दान आदि से मैं नहीं मिलता हूँ; अनन्यता से मिलता हूँ—**'भक्त्या तु अनन्या शक्यः...'** (११.५४)। अगर दुराचारी भी अनन्य है तो वह साधु अर्थात् आदर्श पुरुष हो जाता है—**'अपि चेत् सुदुराचारो भजते माम् अनन्यभाक्'** (गी० ९.३०)।

भागवत् में भगवान् कपिल ने माता देवहूति को अनन्यभाव से अपनी भक्ति के लिये कहा है—**'मयि अनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढ़ाम....'** (३.२५.२२) तथा अन्य देवताओं की आराधना के लिये मना किया है—**'विसृज्य सर्वान् अन्यश्च...'** (३.२५.४२)। हमारे आळवार संतजनों ने भगवद् विषयक अनन्यता को ही बताया है—

क्वचित् क्वचिन्महाराज द्रविडेषु च भूरिशः ।
ताम्रपर्णीनदी यत्र कृतमाला पयस्विनी ।।
कावेरी च महापुण्या प्रतीची च महानदी ।
ये पिबन्ति जलं तासां मनुजा मनुजेश्वर ।।
(भा० ११.५.३९-४०)

भाव है कि सबकुछ भगवान् की शरणागति से करे—**'कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्याऽऽत्मना वानुसृतस्वभावात् । करोति यद् यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पयेत्तत्'** । (भा० ११.२.३६)।

देव शब्द मीमांसा

यज्ञ की महत्ता बताते हुए भगवान् ने गीता में कहा है—**'देवान् भावयत् अनेन....परस्परं भावयतः श्रेयः...'** (गी० ३.११)। मनुष्य एवं देवता एक-दूसरे को प्रसन्न करने में सहयोग करें; परन्तु तृष्णावश **'कामैः तैः तैः हृतज्ञानाः प्रपद्यन्ते अन्यदेवता'** (गी० ७.२०)। सांसारिक कामना की पूर्ति के लिये मूढ़ मनुष्य अन्य देवों की शरण में जाते हैं। **'....क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति...'** (गी० ९.२१) और पुण्य का क्षय होने पर धरती पर पुनः चले आते हैं। स्वर्ग से देवता भी पुण्य का क्षय होने पर जब पुनः जन्म लेकर पृथ्वी पर ही आ जाते हैं तब वे अन्य मनुष्यों का कैसे कल्याण करेंगे। अतः गीता के तीसरे अध्याय के ११वें श्लोक के देव लोग त्रिदेव विष्णु वैकुण्ठ के दिव्यपार्षद सतोगुणी वृत्तिवाले सदाचारी के लिये कहा गया है न कि क्षुद्र इन्द्र आदि देवतागण के लिये। इसी तरह से गीता (११.४८) **'न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानै....'** में यज्ञ का भाव क्षुद्र देवों के सांसारिक कामनाओं के फल दायक यज्ञ से है न कि विष्णु यज्ञ से।

एक कोश यमुनावन में चलकर भगवान् ने पवित्र गजकन्द का भोजन किया। मृग गजकन्द के लिये है। 'हत्वा' का 'ह' एवं 'तु' निश्चयार्थक है तथा आ उपसर्ग चरेतु विधिपूर्वक भोजन करने से सम्बद्ध है।

(५) ऐणेयं मांसमाहृत्य यक्ष्यामहे वयम् ।

कर्त्तव्यं वास्तु शमनं सौमित्रे चिर वासिभिः ।।

(वा०रा०, अयो० ५६.२२)

चित्रकूट में नवीन पर्णशाला की वास्तुशान्ति के लिये ऐणेयं यानी सुगन्धित वस्तुविशेष तथा वाराही कन्द की व्यवस्था करने को कहते हैं। वास्तुशान्ति में भगवान् अपनी पूजा की बात करते हैं जैसे कृष्णजी ने गोवर्धन पूजा में अपनी पूजा करायी।

'मृगं हत्वानय क्षिप्रं लक्ष्मणेह शुभेक्षण' (वा० रा०, अयो० ५६.२३)। मृग गजकन्द के लिये है। हत्वा का ह एवं तु निश्चित बोधक है। शुभेक्षण यानी अच्छे गजकन्द की पहचान में चतुर लक्ष्मण जी।

ऐणेयं श्रपयस्व एतत् शाला यक्ष्यामहे वयम्।
त्वर सौम्य मुहूर्तोऽयं ध्रुवश्च दिवसो ध्यम्।।

(वा०रा०, अयो० ५६.२५)

पूजा के लिये भगवान् वाराहीकन्द का पाक शीघ्र बनाने को कहते हैं; क्योंकि स्थिर लग्न में पूजा सम्पन्न होनी है।

सलक्ष्मणः कृष्ण मृगं हत्वा मेध्यं प्रतापवान्।
अथ चिक्षेप सौमित्रः समिद्धे जातवेदसि।।

(वा०रा०, अयो० ५६.२६)

लक्ष्मण जी काला गजकन्द उखाड़ लाये एवं आज्ञानुसार आग में सिद्ध करने के लिये उसे रखे।

तत् तु पक्वं समाज्ञाय निष्टप्तं छिन्नशोणितम्।
लक्ष्मणः पुरुषव्याघ्रमथ राघवमब्रवीत्।।

(वा०रा०, अयो० ५६.२७)

आग में दिये हुए कन्द की जब रस सूखने लगा तब लक्ष्मण ने भगवान् से कहा—

अयं सर्वः समस्ताङ्गः शृतः कृष्णमृगो मया।
देवतां देव सङ्काश यजस्व कुशलो ह्यसि।।

(वा०रा०, अयो० ५६.२८)

समस्तांगः अर्थात् जिससे समस्त अंग पुष्ट हो जाते हैं ऐसा काला गजकन्द सिद्ध होकर तैयार है। आप यज्ञ के अधिकारी हैं पूजन करें। भगवान् राम जब दशरथ जी को इङ्गुदी फल एवं बेर चूर्ण से पिण्ड कर रहे थे तो यह भी कहा था कि जो व्यक्ति जो भी खाता है उसी से देवता की पूजा करता है। इससे यह स्पष्ट है कि भगवान् कन्द मूलादि ही आहार करते थे।

'..यैर्माल्यैः फलमूलैः पक्वैर्मासेयथाविधि।
अद्भिर्जपैश्च वेदोक्तैर्दर्भैश्च ससगिल्कुशैः।।

(वा०रा०, अयो० ५६.३४)

भगवान् ने फूलमालाओं, कन्दमूलों, फलों, पके फलों के भीतर का सार यानी पके केले इत्यादि जल वैदिक मन्त्रों का जप कुश समिधा आदि से वास्तुशान्ति की।

(६) तिष्ठन्तु सर्वदाशाश्च गंगामन्वाश्रिता नदीम्।
बलयुक्ता नदीरक्षा मांसमूलफलाशनाः।।

(वा०रा०, अयो० ८४.७)

भरत जी के चित्रकूट गमन के समय निषादराज अपने लोगों को कन्द मूल फल खाकर बलपूर्वक गंगाघाट की रखवाली की आज्ञा देते हैं।

इत्युक्त्वोपायनं गृह्य मत्स्यमांसमधूनि च।
अभिचक्राम भरतं निषादाधिपतिर्गुहः।।

(वा०रा०, अयो० ८४.१०)

स्वयं निषादराज मत्स्य यानी सोमरस, कन्द तथा मधु यानी अन्य श्रमहारी पुष्परसों के साथ भरत जी से मिलने गया।

अस्ति मूलफलं चैव निषादैः समुपाहृतम्।
आर्द्रं मांसं च शुष्कं च वन्यं चोच्चावचं महत्।।

(वा०रा०, अयो० ८४.१७)

उच्च कोटि के रसवाले तथा सूखे कन्द मूल फल निषादराज द्वारा लाया गया। यहाँ मांस राज-भोग का भी सूचक है। भरत जी राजा हैं तथा निषादराज प्रजा हैं अतः राजभोग की सामग्री भी उपयुक्त है।

(७) 'अन्याः श्रवन्तु मैरेयं सुरामन्यासुनिष्ठिताम्' ।
(वा०रा०, अयो० ९१.१५)

भरत जी की आगवानी में भारद्वाज जी नदियों को आह्वान कर मैरेय सुरा यानी धूप में सन्धानित द्राक्षा एवं धावा पुष्प के मिश्रित उत्तम पेय प्रस्तुत करने को कहते हैं। इनका अर्थ मदिरा कभी हो ही नहीं सकता है; क्योंकि न भरत जी न भरद्वाज जी मदिरा सेवन करते थे। **'...सुरादीनि च पेयानि मांसानि विविधानि च'** (वा०रा०, अयो० ९१.२१) चाँद से मुनि कहते हैं कि उत्तम पञ्चामृत पेय तथा राजभोग उपलब्ध करायें।

'सुराः सुरापाः पिबत पायसं च बुभुक्षितः' (अयो० ९१.५२)। नारी रूप में वृक्षों से मुनि पञ्चामृत तथा खीर उपलब्ध कराने को कहते हैं। **'मांसानि च सुमेध्यानि भक्ष्यन्तां योयदिच्छति'** (अयो० ९१.५२)। पके हुए पवित्र फल या राजभोग इच्छा भर लोग ग्रहण करें। **'आजैश्चापि वाराहै-र्निष्ठानवरसञ्चयैः'** (अयो० ९१.६८) **'आजैः यानी अज संज्ञानि बीजानि'** अर्थात् अखरोट, पिस्ता, मूँगफली, चिरौंजी, मेवा आदि पदार्थ तथा कन्द फल दिये गये। आजैः का अर्थ बकरी के घी से पके पदार्थ भी है; क्योंकि बकरी का घी क्षयादि रोगहरण रसायन होता है।

वाप्यो मैरेय पूर्णाश्च मृष्टमांसचयैर्वृताः ।
प्रतप्त पिठरैश्चापि मार्गमायूर कौक्कुटैः ।।
(अयो० ९१.७१)

मुनि के आश्रम की सभी वापियाँ द्राक्षारस से भरी थीं तथा पके सुस्वादु फलों के ढेर लगे थे। यहाँ मार्ग शब्द यानी मृग कस्तूरी, मयूर यानी मयूरशिखा औषधि नागरमोथादि तथा कौक्कुट अर्थात् काकोली क्षीरकोली पौष्टिक पदार्थ के लिये प्रयुक्त हैं। **'तथैव मत्ता मदिरोत्कटा नरास्तथैव दिव्यागरुचन्दनोक्षिताः'** (अयो० ९१.८४)। भरद्वाज मुनि के आश्रम से सभी अप्सराओं, स्वागतकर्त्ताओं के चले जाने के बाद भी भरत जी के लोग पुष्ट कन्दमूल फल द्राक्षादि रसों का पान कर हृष्ट पुष्ट सानन्द महसूस कर रहे थे।

(८) तां तथा दर्शयित्वा तु मैथिलीं गिरि निम्नगाम् ।
निषसाद गिरिप्रस्थे सीतां मांसेन छन्दयन् ।।
इदं मेध्यमिदं स्वादु निष्टप्तमिदमग्निना ।
एवमास्ते स धर्मात्मा सीतया सह राघवः ।।
(वा०रा०, अयो० ९६.१-२)

रामजी सीताजी को मन्दाकिनी की शोभा दिखाकर एक पत्थर पर बैठ गये तथा उनके द्वारा पकाये गये कन्द मूलों के स्वाद की प्रशंसा करने लगे। यहाँ रामजी को धर्मात्मा कहा है। ऐसी स्थिति में मांस पकाने का अर्थ घोर विरोधाभासक होगा।

(९) पायसं कृशरं छागं वृथा सोऽश्नातु निर्घृणः ।
गुरुंश्चाप्यवजानातु यस्यार्योऽनुमते गतः ।।
(वा०रा०, अयो० ७५.३०)

भरज जी कहते हैं—अगर रामजी उनकी सम्मति से जङ्गल गये हों तब उनको सब पाप लगे जो भगवान् को बिना चढ़ाये खीर, खिचड़ी, तुलसी की मञ्जर पत्ती खाने से लगता है। यहाँ छाग का अर्थ है निर्मल वृक्ष कीटाणुनाशक तुलसी आदि से है।

(१०) न मांसं राघवो भुङ्क्ते न चापि मधुसेवते ।
वन्यं सुविहितं नित्यं भक्तमश्नाति पञ्चमम् ।।
(वा०रा०, सुन्दर० ३६.४१)

सुन्दर काण्ड का यह श्लोक हनुमान जी द्वारा सीताजी के प्रश्न के उत्तर में कहा गया है। भगवान् सुग्रीव का राजभोग भी ग्रहण नहीं करते न पुष्टिकारक पुष्पों के रस अर्थात् न द्राक्षारस ही पीते हैं। दिन के पाँचवें प्रहर में मात्र कन्दमूल खाते हैं।

।। श्रीमते रामानुजाय नमः ।।

सेवक सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि.....

(श्रीस्वामी जी की पुस्तकें भाग)

रामरहस्य

एक बार तरेत में परमहंस स्वामी जी महाराज उस मण्डप में विराज रहे थे जहाँ आज दिव्य मन्दिर बना है। प्रायः तुलसी दास जी रचित रामचरितमानस से गान बजान कार्यक्रम चलता था। एक बार पाली के रामलखन शर्मा जी ने—

औरो एक गुपत मत सबही कहउँ कर जोरि।
सङ्कर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि।।

(मानस, उत्तर०, दोहा ४५)

तथा **'यह महँ रामरहस्य अनेका'** (बालकाण्ड, दोहा ११० चौपाई २)। पर परमहंस स्वामी जी को प्रकाश डालने के लिये निवेदन किया। मानस में 'रहस्य' शब्द कई प्रसङ्गों में प्रयुक्त हुए हैं। परमहंस स्वामी जी महाराज ने सभी प्रसङ्गों का सुन्दर विवेचन किया है इससे मानस को समझना सुलभ हो गया है। इस पुस्तक के रामरहस्य भाग में पैंतालीस प्रसङ्गों का सार सङ्क्षेप प्रस्तुत हैं—

(१) 'रामरहस्य ललित विधि नाना' (उत्तर० ११३.१)। गोपनीय तथ्य को रहस्य कहते हैं और एकान्त में इसे परम अधिकारी को बताने जाने का विधान है। यह गुप्त तथा प्रकट दोनों तरह का होता है। **'औरो रामरहस्य अनेका'** (बाल० ११०.२), **'यह रहस्य रघुनाथ कर वेगि न जाने कोय'** (उत्तर० ११६)। रामजी के हृदय की बात है— **'यह जनि कतहँ कहेसि सुनु माई'** (बाल २०१.४)। **'लछिमनहुँ यह मर्म न जाना'** (अर० २३.३) अनधिकारी को नहीं बताये। **'कहिये कतहुँ सठहि हठ सीलहि'** (उ० १२७.२) अधिकारी को ही बताये। **'पाई उमा यह गोप्यमयि सज्जन करहिं प्रकाश'** (उत्तर० ६९)। **'गूढ़ो तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहीं'** (बाल० १०९.१)।

(२) 'यह रहस्य रघुनाथ कर वेगि न जाने कोय' (उत्तर० ११६) नारी रूपिणी माया नारी स्वरूपा भक्ति को नहीं ठग सकती जबकि पुरुष रूप माया से ठगा जाता है। भक्ति की ज्ञान पर प्रधानता ही रहस्य है। मनु शतरूपा को भगवान् ने राम जानकी के वेष में मानवी देह से दर्शन दिया; क्योंकि रावण को मनुष्य के हाथ ही मरना था। ये सब हैं जो पहले शीघ्र समझ में नहीं आता।

(३) 'निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह पकवाना' (बाल० २००.१)। (वर्तमान गोरखपुर से प्रकाशित संस्करण में 'पकवाना' को 'स्नाना' कर दिया गया है।) भगवान् पकवान खा गये हैं। कौसल्या जी भगवान् विष्णु एवं रामजी में अन्तर समझती थीं इसीलिये रामजी पकवान खा गये हैं।

(४) 'निगम नेति शिव पार न पावा। ताहिधरै जननी हठ धावा' (बाल० २०२.४)। दशरथ जी ज्ञान के प्रतीक थे, भगवान् भाग गये; परन्तु भक्तिमति माता ने उन्हें पकड़ लिया। ईश्वर में यह रहस्य है।

(५) 'जननी भवन गये पुनि चले नाइ पदशीशा' (बाल० २०८)। विश्वामित्र मुनि की यज्ञरक्षा हेतु चलने के पूर्व भगवान् माताजी का नमन करते हैं। माता ने कोई रोक टोक नहीं किया; परन्तु पिता दशरथ जी ने शुरू में मनाकर दिया था—**'देह प्राण ते प्रियकछु नाहीं। सो मुनि देउँ निमिष एक माहीं'** (बाल० २०७.१)। जन्म के समय तथा बाद में पूजा के पकवान खाकर भगवान् ने माता को अपना स्वरूप दिखा दिया था और दशरथ जी को इसका

ज्ञान नहीं था। वे भगवान् को नारायण नहीं समझ पाये थे; परन्तु माँ जानती थीं। इसलिये माता ने नहीं रोका; परन्तु पिता अनभिज्ञ थे।

(६) 'यह जनि कतहँ कहेसि सुनु माई' (बाल० २०१.४)। भगवान् रङ्गनाथ की पूजा का पकवान खाते हुए भगवान् ने माता को अपना स्वरूप पुन: दिखाया; परन्तु किसी को कहने से मना इसलिये किया कि कहीं प्रचार न हो जाये कि रामजी भगवान् विष्णु हैं और रावण मनुष्य से नहीं अपितु विष्णु भगवान् से मारा गया है। हनुमान जी को भी पहली भेंट में अपना परिचय **'कोसलेश दशरथ के जाए'** (किष्किन्धा० १.१) कहकर दिया।

(७) मारीच को बिना फर के बाण से समुद्र पार फेंक दिया, मारा नहीं। रहस्य है कि मारीच लीला सहायक था और आगे की लीला बाकी थी।

(८) 'जो पाँचहिं लागै मत नीका। हरषि करहु रघुनाथहि टीका' (अयो० ४.२)। राजा दशरथ ने स्वयं निर्णय क्यों नहीं लिया कारण कि कैकेयी से विवाह के समय अश्वपति राजा को दशरथ ने यह वचन दिया था कि कैकेयी का पुत्र ही राजा होगा। रामजी ने भी इसीलिये कहा—

बिमल वंश यह अनुचित एका।
बन्धु बिहाय बड़ेहि अभिषेका।। (अयो० ९.२)

(९) 'तुम पावक महँ करहु निवासा' (अरण्य० २३.१)। सीताजी को रामजी ने अग्नि में क्यों रखा, इसलिये कि अग्नि सीताजी के परनाना थे। सम्बन्ध ऐसे हैं कि ईश्वर से आकाश तब आकाश से वायु और वायु से अग्नि फिर अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई है। सीताजी धरती की बेटी थीं इसलिये अग्नि उनके नाना हुए। अपना निजी सम्बन्धी ही ज्यादा विश्वासी होता है।

(१०) 'जबहि राम सब कहा बखानी। प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी' (अरण्य० २३.२)। रहस्य है कि भगवान् ने सब क्या बताया। पाँच बातें रामजी ने कही—१. मारीच के आने पर मृग लाने को कहना, २. भगवान् का जाना, ३. मारीच का भगवान् जैसा बोलना, ४. सीताजी का लक्ष्मण को भेजना तथा ५. रावण का सीताजी को ले जाना।

(११) 'अस्थि समूह देखि रघुराया', 'निसिचर हीन करौं महि...' (अरण्य० ८.३, ९)। वाल्मीकि रामायण में दिया है कि सीताजी ने भगवान् को सभी निशाचरों को मारने से मना किया। भगवान् नहीं माने। जब सीताजी यह सोचकर लङ्का गयीं कि अकेले रावण को समझाने से अन्य निशाचरों को नाश से बचाया जा सकता है। रावण नहीं माना। रामजी की प्रतिज्ञा पूरी हुई निश्चरगण मारे गये। **'लछिमनहुं यह मर्म न जाना'** (अरण्य० २३.३)। यह सब बातें लक्ष्मण जी को नहीं पता था।

(१२) 'तब रघुपति जानत सब कारन। चले हरषि सुर काज सँवारन' (अरण्य २६.३), **'... हरि प्रेरित लछिमन मन डोला'** (अरण्य० २७.३), **असम्भवम् हेम मृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय'**। भगवान् सब कारण जानते हैं। स्वर्ण मृग का होना असम्भव है और रावण को उन्हें मौका देना था, जिससे लीला आगे बढ़े। इसीलिये सीता जी ने भी लक्ष्मण को दुर्वचन कहा। ऐसा भी भाव मिलता है कि लक्ष्मण जी को दुर्वचन कहना एक भक्त का अनादर था, इसीलिए सीताजी को लङ्का का कष्ट झेलना पड़ा।

(१३) 'नाथ दशानन यह गति कीन्हा। सो खल जनक सुता हर लीन्हा' (अरण्य० ३०.१), **'तिन कर क्रिया यथोचित निज कर कीन्हीं राम'** (अरण्य० ३२)। भक्त का देह भगवान् को प्रिय है यही रहस्य है। भगवान् का अवतार वेद धर्म की रक्षा के लिये होता है। इसीलिए भगवान् ने सारे दाहकर्म किये। गीद्धराज को चारों मुक्ति मिली। **'तनु तजि तात जाहु मम धामा'** (अरण्य० ३०.५)

से सालोक्य। **'गीध देह तजि धरि हरि रूपा'** (अरण्य० ३१.१) से सारूप्य। **'मम उर बसउ सो समन संसृति...'** (अर० ३१, छन्द ४) से सामीप्य। धाम में पहुँचने पर सामीप्य से ही सायुज्य मिल गयी।

(१४) 'को तुम तीन देव मह कोउ। नर नारायण की तुम दोउ' (किष्किन्धा० चौपाई ५)। हनुमान जी से पहली भेंट में पूछने पर भगवान् ने अपने अवतार का रहस्य बनाये रखा तथा हनुमान जी को बताया **'कोसलेश दशरथ के जाए'** (किष्किन्धा० १.१)।

(१५) 'पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाई' (किष्किदोहा ४)। अग्नि की साक्षी इसीलिये दी कि अग्नि सीता जी के परनाना यानी नाना के पिता थे नजदीकि थे। अग्नि के प्रकोप से धोखा देने पर सुग्रीव लूला, लंगड़ा या प्राणहीन हो सकता है।

(१६) 'बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइं पूछत अस भयउ', 'की तुम्ह स्यामल गौर शरीरा। छत्रिय रूप फिरहु बन बीरा' (किष्कि० चौपाई ३ एवं ४)। ब्राह्मण होकर क्षत्रिय को हनुमान जी का प्रणाम करने का रहस्य क्या है? कारण है–(क) हनुमान जी ब्रह्मचारी रूप में थे; परन्तु भगवान् तपस्वी के रूप में वानप्रस्थ आश्रमी थे। वानप्रस्थ का स्थान ब्रह्मचारी से ऊपर होता है। (ख) हनुमान जी को रामजी भगवान् दिखते थे। (ग) भगवान् के अप्राकृत शरीर से प्रभावित होकर प्रणाम किए।

(१७) 'लछिमन बान सरासन आनू' (सुन्दर० ५७.१)। क्या रहस्य है कि भगवान् ने समुद्र की पहले स्तुति की पुन: धमकाया भी। कारण कि क्षुद्र देवता कल्याण नहीं करते। इसीलिये भगवान् को छोड़कर किसी अन्य देवता की पूजा न करे। नारद जी ने ध्रुव को समझाया है—**'धर्मार्थ काममोक्षार्थ य इच्छेत् श्रियमात्मनः। एक एव हरिस्तत्र कारणं पादसेवनम्'** (भा० ४.८.४१)।

(१८) 'राम राम हा राम पुकारी। मम दिसि देखि दीन्ह पट डारी' (किष्कि० ४.३)। सुग्रीव की ओर कपड़ा गिराने का रहस्य है कि सीताजी को भागवत की पहचान थी। हनुमान जी के आगे वानरों के प्रधान सुग्रीव के बैठने से वे समझ गयी कि सुग्रीव भक्त हैं। सीताजी दक्षिण दिशा में जा रही थीं, अत: यह रामजी के लिये मार्गदर्शन का भी काम करेगा कि सीताजी सुग्रीव के स्थान से भी दक्षिण ओर गयी हैं।

(१९) 'अब प्रभु चरित सुनावहु मोहि' (उ० १.७)। हनुमान जी से भरत जी के ऐसा कहने पर हनुमान जी ने **'कहे सकल रघुपति गुन गाथा'** (उ० १.८)। क्या रहस्य है कि चरित सुनाने के बदले हनुमान जी ने रामजी के सब गुणों का बखान किया। भगवान् के सारे व्यवहार उनके दिव्य गुणों के कारण होते हैं। जैसे शरण्य गुण के कारण विभीषण एवं सुग्रीव को शरण में लेना। उदार गुण के कारण **'जो संपति शिव रावनहि दीन्ह दिये दस माथ। सो सम्पदा विभीषण ही सकुच दीन्ह रघुनाथ'** (सु० ४९.०)। मोक्षप्रदत्व गुण के कारण **'कहहि विभिषण तिन कर नामा। देहि राम तिन कह निज धामा'** (लङ्का० ४४.१)। तेज गुण से—**'तासु तेज प्रभु वदन समाना। सुर नर सकल असम्भव माना'** (लङ्का० ७०.४), **'श्रीरघुवीर प्रताप से सिन्धु तरहिं पाषान'** (लङ्का० ३.०), **'गीध देह तजि धरि हरि रूपा'** (अरण्य० ३१.१), धर्म पालन कर्ता से **'तिनकर क्रिया यथोचित निज कर कीन्ही राम'** (अरण्य० ३२) शील गुण तथा पतित पावनता से शबरी, कोल, किरात आदि से प्रेम करना।

(२०) 'अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा की खानी' (उ० २.५)। रहस्यात्मक

बात है कि अयोध्या तो जड़ है फिर इसे रामजी के आगमन का आभास कैसे हुआ? प्रकृति जड़ है जैसा सुन्दर काण्ड में कहा गया है—**'गगन समीर अनल जल धरनि । इनकी नाथ सहज जड़ करनी'** (५८.२)। अन्य प्रसङ्गों में कहा है—**'सरिता सर गिरि अवघट घाटा । पति पहिचान देहि वर बाटा'** (अर० ६.२)। **'भूतल भाव न होत भरत को । अचर सचर चर अचर करत को'** (अयो० २३७.३)। अयोध्यापुरी दिव्य है; क्योंकि यह वैकुण्ठ से रङ्गनाथ भगवान् के साथ इक्ष्वाकु को मिली। इसे भगवान् के लौटने का दिव्य ज्ञान होना स्वाभाविक है। 'पर' वासुदेव रूप, 'अर्चा' रूप श्रीरङ्गनाथ भगवान् तथा 'वैभव' रूप रामजी सब एक ही हैं।

(२१-२२) 'अमित रूप प्रगटे तेहि काला' (उ० ५.३), **'छन मह सबहि मिले भगवाना'** (उ० ५.४) रहस्य है कि **'धाई धरे गुरु चरन सरोरूह'** (उ० ४.२) से लेकर **'सीता चरन भरत सिर नावा'** (उ० ५.१) तक एक-एक कर भगवान् गुरु तथा माता एवं भाईयों से मिलते हैं; परन्तु समस्त नगर-वासियों से एक ही बार अनेकों स्वरूप धरकर क्यों मिलते हैं? परिजनों से मिलने में भगवान् लोक रीति की मर्यादा की रक्षा करते हैं; परन्तु अयोध्या-वासियों से एक ही बार में मिलकर उन सबों के हृदय में भगवान् से अगाध प्रेम की उत्कण्ठा की समानता का सम्मान करते हैं।

(२३) 'प्रेरित मन्त्र ब्रह्म सर धावा' (अर० १.१)। रहस्य है कि ब्रह्मास्त्र ने जयन्त जैसे निर्मम अपराधी को छोड़ क्यों दिया? कारण कि जयन्त का अपराध सीताजी के साथ था और वे मातृत्व गुण के कारण क्षमाशील हैं—**'वधार्थमपि काकुत्स्थ कृपया परिपालयत्'** (वा०रा०, सु० ३२.३५)। **'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ।**

(२४) क्या रहस्य है कि कौसल्या जी को भगवान् ने अपना अलौकिक स्वरूप दो बार दिखाया; परन्तु पिता दशरथ जी को एक बार भी नहीं। कौसल्या जी सती-साध्वी, पति परायणा थी; परन्तु दशरथ जी ने एक से ज्यादा रानी के साथ विवाह किया था। जब कौसल्या जी सती होने चलती हैं तो भरत जी रोक देते हैं—**'गहि पद भरत मातु सब राखी'** (अयो० १६९.१)।

(२५) 'निज उरमाल वसन मनि बालितनय पहिराइ । बिदा कीन्ह भगवान् सब बहु प्रकार समझाई' (उ० १८)। अङ्गद को विदा करते समय अनेक प्रकार से समझाने का क्या रहस्य है? (१) भगवान् ने अङ्गद को समझाने की जरूरत इसलिए महसूस की कि अङ्गद के मन में यह था कि उसके पिता की हत्या सुग्रीव ने करायी थी। घर लौटने पर दोनों में कहीं शत्रुता न उभर उठे। इसी कटुता को दूर करने के लिये भगवान् ने अङ्गद को भली-भाँति समझाया। (२) बालि सुग्रीव से शक्ति-शाली था तथा उसने बलपूर्वक सुग्रीव की पत्नी रुमा पर अपना अधिकार जमा लिया था। सुग्रीव दुन्दुभि के भय से भागा था उसे राजलोभ न था; परन्तु सभासदों ने उसे हठपूर्वक राजा बना दिया। (३) रुमा पर बलात् अधिकार करने के कारण बालि के अपराध की सजा थी प्राणदण्ड और इससे वह नरकगामी होने से बच गया। (४) अङ्गद की माँ सती साध्वी नारी थी, उसने बालि को समझाया—**सुनु पति जिन्हहि मिला सुग्रीवा । ते दोउ बन्धु तेज बल सींवा ।।** (किष्कि० ६.१४)। पूरे क्षेत्र के राजा भरत हैं और मैं उनके प्रतिनिधि की तरह वहाँ था; परन्तु अभिमानवश समझ नहीं सका फिर भी उसे अपने धाम में भेज दिया हूँ। बालि के पाप की ताप से तुम सन्तप्त मत होना। (५) राज का अधिकारी विजेता होता है और विजेता मैं था। सुग्रीव तुमसे बड़े थे इसलिये हमने उनको राजा बनाया और तुमको युवराज बनाया। राजा मुख से आज्ञा का अधिकारी होता है; परन्तु कार्यान्वयन

का श्रेय तो युवराज को होता है। (६) बालि को अपने प्रतिद्वन्दी का आधा बल मिल जाता था इसलिये उसके शत्रु अवसर देख आघात कर सकते हैं। आवश्यकतानुसार मैं इसमें तुम्हारा सहायक बनूँगा। (७) विभीषण की शरणागति में मैंने उसके दोष को भी अपना लिया था। पुनः भरत जी के उदाहरण से समझाते हैं कि भरत ने कहा था—**'आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा'** (अयो० ३००.२)। अन्यों के घर पहुँचने पर उसके परिवार सानन्द रहेंगे; परन्तु तारा तुम्हारी अनुपस्थिति से दुःखी रहेगी। इसलिये मेरी आज्ञा मानकर जाओ और तारा को आश्वस्त रखो। मेरा नाम अच्युत है अर्थात् मुझे प्राप्त करने वाले की च्युति नहीं होगी। (८) अङ्गद ने कहा—**'मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयेउ तुम्हारेहि कोंछे घाली।। मोरे तुम प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता।। ....राखहु सरन जानि जन दीना'** (उ० १७.१, २, ३)। भगवान् ने पुनः समझाया तुम्हारे नाते तुम्हारे परिवार का दायित्व मुझ पर है। विभीषण के नाते रावण मेरा भाई हुआ और मेरे कहने से विभीषण ने उसका दाह संस्कार किया। मेरी सेवा यही है कि तुम घर जाओ और तारा की रक्षा करो। (९) भगवान् ने अपने शरीर का वस्त्र एवं माला अङ्गद को पहनाया था। उन वस्तुओं की याद कराते हुए उन्होंने उसे समझाया जैसे वस्त्र शरीर की रक्षा करते हैं उसी तरह मैं तुम्हारी रक्षा करुँगा और जैसे माला का स्थान हृदय पर है उसी तरह तुम हमारे हृदय में रहोगे। (१०) भगवान् ने अन्यों को कहा—**अब गृह जाहु सखा सब...'** (उ० १६); परन्तु अङ्गद को स्नेह एवं सम्मान दिखाते हुए **'विदा कीन्हि भगवान तब...'** (उ० १६)। जाते-जाते अङ्गद को लगा कि **'मन अस रहन कहहिं मोहि रामा'** (उ० १८.२) परन्तु भगवान् ने अङ्गद को विदा किया। श्रीकागभुसुंडी जी कहते हैं कि भगवान् को कौन समझे ये वज्र से भी कठोर एवं फूल से भी कोमल हैं—**'कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहि चाहि। चित्त खगेश रामकर समुझि परइ कहु काहि'** (उ० १९.११)। बालि के मरते समय तारा ने भगवान् से भक्ति का वर माँगा था—**'उपजा ज्ञान चरन तब लागी। लिन्हेसि परम भक्ति वर माँगी'** (किष्कि० १०.३) भगवान् ने गीता में कहा है—**'...मद्भक्ति लभते पराम्'** (गी० १८.५४)। रहस्य यही है कि भगवान् ने भक्ति की रक्षा के लिये अङ्गद की एक नहीं मानी तथा तारा को प्राथमिकता दी।

(२६) 'मन्त्रिन सहित यहाँ एक बारा। बैठि रहेऊ कछु करत विचारा' (किष्कि० ४.२)। क्या विचार रहे थे यही रहस्य की बात है। बालि के डर से त्राण के लिये सूर्य, इन्द्र आदि से सहायता पर विमर्श चल रहा था। किसी ने कहा इन्द्र तो पापात्मा है। गौतम मुनि के शाप से उसके शरीर पर हजारों भग हैं। किसी ने ब्रह्मा का नाम लिया तो बात आयी कि मधुकैटभ से उनकी रक्षा भगवान् ने की थी। शङ्कर जी ने उनका पाचवाँ सिर काट लिया था। वे क्या दूसरे की रक्षा करेंगे। जब शङ्कर जी की बात चली तो हुआ कि उनकी भी वृकासुर से रक्षा तो विष्णु भगवान् ने की थी। अतः एक नारायण ही रक्षक हैं अन्य कोई नहीं। उनकी सहेतुकी कृपा तो बहुत कठिन है और निर्हेतुकी कृपा पर ही आधारित रहा जाय। उसी समय **'राम राम हा राम पुकारी। मम दिसि देख दीन्ह पट डारी'** (किष्कि० ४.३)।

(२७-क) 'अतिलालसा सबहि मन माही। नाम ग्राम पूछत सकुचाही।। जो तिन मह वय वृद्ध सयाने। तिन करि युक्ति राम पहिचाने' (अयो० १०९.२) रहस्य है कि जब भगवान् जंगल के रास्ते से जा रहे थे तो ग्रामीण पता पूछने से सकुचा क्यों रहे थे तथा वृद्ध लोगों ने किस तरीका से पता लगाना चाहा जो भगवान् को पहले ही पता चल

गया। भगवान् तपस्वी के वेश में धनुषधारी स्वरूप में थे जो वानप्रस्थी का प्रतीक है। प्राय: वानप्रस्थी तथा संन्यासी से नाम पता नहीं पूछा जाता। इसीलिये लोग सङ्कोच में थे। एक वृद्ध ने छोटे बच्चों के सहारे पता करना चाहा तो भगवान् पहले ही समझ गये एवं सब कुछ बता दिया कि अयोध्या नरेश अपने पिता की आज्ञा से वन में जा रहे हैं।

(२७-ख) 'को साही सेवक ही निवाजी। आप समान साज सब साजी' (अयो० २९८.३)। चित्रकूट में भरत जी भगवान् राम की महानता बता रहे हैं कि वे स्वयं अपने सेवक का सारा साज समान स्वयं तैयार कर देते हैं। रहस्य है कैसे करते हैं? जटायु जी का उदारण—**'गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा।। स्याम गात बिसाल भुज चारी'** (अर० ३१.१)। **'भोगमात्र-साम्यलिङ्गाच्च'** (ब्र०सू० ४.४.२१)। यानी भोग में जीव को समानता दी गयी है। अपने समान बनाने वाले एकमात्र भगवान् ही हैं।

// रामरहस्य भाग-२ //

यह भाग 'रामरहस्य' के स्वतन्त्र प्रकाशन से लिया गया है। उसके पूर्व का भाग 'मर्यादा पुरुषोत्तम और हिंसा तथा रामरहस्य' पुस्तक से लिया गया था।

(२८) 'राम सिये तन सकुन जनाये। फरकही मङ्गल अंग सुहाये' (अयो० ६.४)। गुरु वसिष्ठ के आज्ञानुसार अभिषेक की पूर्व सन्ध्या पर सीताजी के साथ भगवान् राम नियमपूर्वक अपने कुलदेवता श्रीरङ्गनाथ भगवान् के मन्दिर में बिताये थे। वहाँ शुभ शकुन हुआ। रामजी का दायाँ अङ्ग तथा सीताजी का बायाँ अङ्ग फड़का। क्या रहस्य है कि शुभ शकुन के बाद भी जङ्गल जाना पड़ा। जब अभिषेक की जानकारी रामजी को मिली थी **'राम हृदय अस विस्मय भयउ'** (अयो० ९.२)। कारण कि भरत को राज देने के लिये कैकेयी से विवाह के समय ही दशरथ वचनबद्ध हो गये थे; परन्तु वे वैसा कर नहीं रहे थे। भगवान् ने जब जङ्गल जाने का प्रस्ताव सुना तब **'नव गयंद रघुवंश मणि राज अलान समान। छूट जानि वन गमन सुनि उर अनंद अधिकान'** (अयो० ५१)। अर्थात् जैसे जब नया हाथी सीकड़ के बन्धन से छूटता है, उसी तरह हर्षित हुए। कारण कि भगवान् धर्म की रक्षा चाहते थे। पिता के पूर्ववचन की रक्षा हुई और **'भरत प्रानप्रिय पावही राजू। विधि सब विधि भा सम्मुख आजु'** (अयो० ४१.१)। प्यारा भाई राजा बना इससे प्रसन्नता हुई। भगवान् को होने वाली प्रसन्नता ही शुभ शकुन का सङ्केत था। दशरथ जी ने भी कैकेयी को कहा था रामजी **'धर्म धुरीन विषय रस रूखे'** (अयो० ४९.२)। भगवान् के वन जाने से 'अङ्ग अङ्गी' अर्थात् भगवान् के अङ्ग स्वरूप सीताजी के गुणों का विकास तथा अङ्गी भगवान् के भी अनन्य गुणों से सबों को लाभ हुआ। जैसे– (१) सीताजी के सतीत्व गुण का प्रकाश **'प्रभा रहै कहँ भानु बिहाई'** (अयो० ९६.३)। जयन्त को क्षमा करने से सीताजी के शरण्य गुण तथा लङ्का वनवास से पक्षी सुग्गी के वचन का पालन। (२) सुमित्रा तथा लक्ष्मण जी के प्रसङ्ग से सुमित्रा जी के मातृत्व का तथा लक्ष्मण जी के शेषत्व का प्रकाशित होना। (३) जड़ वृक्षों का प्रेम प्रकाशित हुआ अयोध्या के वृक्ष मुरक्षाये; परन्तु वन के वृक्ष **'सब तरु फलै राम हित लागी'** (लङ्का० ४.३)। (४) गङ्गा पार करने पर रथ के घोड़े पशुओं का प्रेम **'देखि दक्षिण दिसि हय हिहिनाहीं'** (अयो० १४१.४), **'न तृन चरही न पियही जल'** (अयो० १४२)। (५) निषाद राज का प्रेम। (६) भरत जी का प्रेम **'भरत सरिस को राम सनेही। जग जपु राम राम जपु जेही'** (अयो० २१७.४)। भरत जी के पूर्व पादुका का महत्व अज्ञात था। पादुका पूजन उन्हीं का चलाया हुआ है। भरत जी की महिमा कहने में वसिष्ठ जी भी समर्थ नहीं हैं **'भरत महा महिमा जल राशि। मुनि**

मति तीर ठार अवला सी' (अयो० २५६.१)। (७) वनवासियों का प्रेम। (८) सुतीक्ष्ण मुनि का प्रेम। (९) जटायु का प्रेम। (१०) शबरी की भक्ति।

(२९) 'सृंगी ऋषिही वशिष्ठ बुलावा। पुत्र लागि शुभ यज्ञ करावा' (बाल० १८८.२)। गुरु वसिष्ठ के रहते शृङ्गी मुनि को बुलाने का रहस्य है कि अथर्ववेदाधिकारी यह काम कर सकते थे, वे अथर्ववेद के अधिकारी थे; परन्तु वसिष्ठ जी अथर्व वेद के अधिकारी नहीं थे; क्योंकि वेद का अधिकार ऋषियों में बँटा हुआ था।

(३०) 'प्रौढ भये तेहि सुत पर माता। प्रीति करै नहीं पाछिल बाता' (अर० ४२.४)। नारद जी को भगवान् समझाते हैं। पीछे की बात का रहस्य है कि माता के आहार के कारण उसके दूध का प्रभाव शिशु पर पड़ता है। बच्चे को सदा गोद में रोग के उपचार हेतु दवा पिलाती है। बच्चे को आग साँप आदि का अज्ञानवश भय नहीं होता, माता बचाती है। बच्चे पर सङ्गति दोष लगने का भय रहता है माता बचाती है। बच्चे की उम्र बढ़ जाने पर इन सारी पिछले दायित्वों से माता निश्चिन्त हो जाती है।

(३१-क) 'जे ज्ञान मान विमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी। ते पाय सुरदुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरि' (उ० १२.छ. ४)। वन से लौटने पर यह राज्याभिषेक के समय वेद की स्तुति का प्रसंग है। **'यद् गत्वा न निवर्तन्ते'** (गी० १५.६)। वहाँ से नीचे गिरने का क्या रहस्य है। आत्म अनुभव से शबरी सम्पन्न थी और इसे कैवल्य पद प्राप्त होना कहते हैं। **'साधन धाम बिबुध दुर्लभ तनु मोहिं कृपा करि दीन्हौं'**। यहाँ 'पद' तथा 'धाम' दोनों मनुष्य शरीर वाचक है। मानव शरीर देवगन भी नहीं पाते। इसी से मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। **'सुर दुर्लभ सुख करी जग माहीं। अन्तकाल रघुपति पुर जाहीं'** (उ० १४.२)। इसलिये इसे पाने के बाद भगवान् की भक्ति छोड़ देने पर इससे नीचे गिरना यानी कीट पतङ्ग का शरीर मिलने का डर बना रहता है।

(३१-ख) 'काजु हमार तासु हित होई। रिपु सन करब बात कही सोई' (लङ्का० १६.४)। इसमें क्या रहस्य है कि अगर रामजी रावण का हित ही चाहते थे तब 'रिपु' यानी शत्रु क्यों कहा तथा अन्ततः मारे क्यों? अङ्गद को रावण के पास दूत भेजने का यह प्रसङ्ग है। हनुमान जी ने रावण को सचेत कर दिया था—**'राम विरोध न उबिरहहु सरन विष्णु अज ईस'** (सु० ५६)। वन में रामजी से मिलने जाते समय भरत जी कहते हैं—**'अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा'** (अयो० १८२.३)। अङ्गद जी को भेजते समय रामजी चाहते हैं कि विभीषण का भाई होने के नाते रावण का हित होना चाहिये। अङ्गद जी ने भी भरपूर कोशिश की; परन्तु रावण माना नहीं—**'सादर जनक सुता करि आगे। एहि विधि चलहु सकल भय त्यागे'** (लङ्का० १९.४)।

(३२) सुन्दर काण्ड का सुन्दर होने का क्या रहस्य है—(१) जामवान जी ने कहा कि **'राम काज लगि तव अवतारा'** (कि० २९.३)। यह शरीर रामजी के काम के लिये है यह सुन्दर ज्ञान है। (२) **'राम काज करि फिरि मैं आवौं। सीता की सुधि प्रभु ही सुनावौं। सत्य कहउँ मोहि जाने दे माई'** (सु० १.२)। विघ्न डालने वाली से चतुरतापूर्वक छुटकारा का उपाय सुन्दर है। (३) **'राम काज सब करिहहु तुम बल बुद्धि निधान'** (सु० २)। सुरसा का यह आशीष सुन्दर है; क्योंकि भवागन् का काम पूरा होने की बात सुनकर हनुमान जी प्रसन्न हो गये। (४) **'अस मैं अधम सखा सुनु मोहु पर रघुवीर। किन्ह कृपा सुमरि गुण भरे विलोचन नीर'** (सु० ७)। दो भागवतों का मिलना तथा रामजी की कृपा को याद कर आँख में जल भर जाना सुन्दर भक्ति है। (५) **'रामचन्द्र गुण बरनै लागा। सुनतहि सीता**

कर दुख भागा' (सु० १२.३)। भगवान् के गुण एवं कथा सुन्दर हैं। (६) **'बुड़त विरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहु जलजाना'** (सु०१३.१)। भाव है कि हनुमान जी विरह में डूबने से निकालने वाले आधार हैं। भक्त का आधार सुन्दर है। (७) **'रघुपति बान कृसानु निसचर निकर पतंग सम। ...जरहि निसाचर जानु'** (सु० १५)। उदाहरण सुन्दर है तथा इस तरह का विश्वास सुन्दर है। (८) **'आशीष दीन्ह रामप्रिय जाना। होहु तात गुण ज्ञान निधाना'** (सु० १६.१), **'अजर अमर गुणनिधि सुत होहु। सदा करहि रघुनायक छोहु'** (सु० १६.२)। भगवान् पर अचल विश्वास होना तथा उन पर ही निश्चित रहने का भाव सुन्दर है। (९) **'अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता'** (सु० १६.३)। अपने को धन्य धन्य मानने का ज्ञान सुन्दर है। (१०) **'केतिक बात प्रभु जातु धान की। रिपुहि जीति आनिय जानकी'** (सु० ३१.२)। विह्वलता में इस तरह का ढाँढस बँधाना चतुर एवं सुन्दर बुद्धिमानी है। (११) **'सुनु कपि तोहि समान उपकारी। कोउ नहीं सुर मुनि तनुधारी।। प्रति उपकार करौं का तोरा। सन्मुख होइ न सकै मन मोरा।। पुनि पुनि कपिहि चितव सुर त्राता। लोचन नीर पुलकि अति गाता'** (सु० ३१.३-४)। सीता माता के आशीष से ही तत्क्षण रामजी के कृपागुण का सुन्दर विकास है। (१२) **'चरण परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवन्त'** (सु० ३२)। हनुमान जी का सुन्दर समर्पण है। (१३) **'प्रभु पद पंकज कपि कर सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीशा'** (सु० ३२.१)। रामजी के चरणारविन्द पर हनुमान जी का सिर एवं उनके सिर पर भगवान् के कर कमल को याद कर महादेव जी मग्न हो गये। सेव्य सेवक भाव सुन्दर है। (१४) **'कपि उठाय प्रभु हृदय लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा'**। जामवान् जी का सुन्दर उपदेश **'राम काज लगि तब अवतारा'** अर्थात् जन्म का फल भगवद् कैंङ्कर्य ही है। इसका फल मिल गया जब भगवान् ने हनुमान जी को हृदय से लगाया। (१५) **'नाथ भक्ति अति सब सुख दायिनी। देहु भक्ति मोहि प्रभु अनपायिनी'** (सु० ३३.१)। भगवान् ने पूर्व में कहा था कि मैं हनुमान से उऋण नहीं हो सकता, इसलिये हनुमान जी द्वारा भक्ति के वर की माँग से भगवान् के भार को कम कर देने का भाव सुन्दर है। यह सब सुन्दर काण्ड की सुन्दरता है।

(३३) 'प्रभु पद पंकज कपि कर सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीशा' (सु० ३२)। हनुमान जी पर रामजी की कृपा से महादेव जी क्यों प्रसन्न हुए। अच्छे लोग दूसरे के लाभ को अपना लाभ समझते हैं—**'पर दुख दुख सुख सुख देखे पर'** (उ० ३७.१)। कुछ लोग हनुमान जी को रुद्रावतार मानते हैं। महादेव जी इसीलिये प्रसन्न हुए कि ग्यारहों रुद्र के सिर पर भगवान् की ऐसी कृपा नहीं हुई जैसी हनुमान जी पर हुई। भगवान् के कृतज्ञता एवं उदारता के गुण का अतिशय विकास देखकर महादेव जी अपने स्वामी के इस स्वभाव को याद कर मग्न हो गये।

(३४) 'वरु अपयश सहतेउ जगमाहीं। नारि हानि विशेष छति नाहीं' (लङ्का० ६०.६)। विवाह के समय पति पत्नी एक-दूसरे की छाया बनकर रहने की प्रतिज्ञा करते हैं। अगर रामजी सीताजी को वन में नहीं लाते तो विवाह की प्रतिज्ञा भंग का अपयश होता। भाव है कि नहीं लाने से अपयश होता; परन्तु लङ्का की लड़ाई का संयोग नहीं होता और वनवास काल में सीताजी की अनुपस्थिति से कोई विशेष क्षति नहीं होती। दूसरा भाव है कि लक्ष्मी जी के विना भगवान् रहते हैं; परन्तु शेष जी के विना नहीं रहते। सीताजी के कारण अगर लड़ाई नहीं करते तो सीताजी अन्ततः प्राण त्याग देती पर लक्ष्मण जी यानी शेष जी का खोने का अपयश नहीं मिलता।

(३५) 'दीन जानि प्रभु निज पद दीन्हा' (बा० २०८.३)। मारीच एवं सुबाहु जैसे बलवान् पुत्र की माँ होने पर भी ताड़का को दीन क्यों कहा। पति के न रहने पर विधवा का जीवन दीन का जीवन है। पाप योनि होने पर भी भगवान् ने उसे अपना लिया।

(३६-क) 'अस्थि शैल सरिता नस जारा। रोमावली अष्टदस भारा' (लङ्का० १४.४)। यद्यपि भार शब्द तौल एवं परिमाण वाचक है; परन्तु प्रसङ्गवश यह संख्यावाचक है। इस पद से **'द्वादश कोटि वृक्षवन लक्ष तीस सुन लीजै। सोरह सत अरु आठ एक तेहि भार गनीजै'** अर्थात् १२, ३०, ०१, ६०८ की संख्या को एक भार कहते हैं। कहा है कि **'चार भार वन पुष्प चार फलफूल विराजै। षड् बेली भू भार चार सिर कंटक राजै'** अर्थात् पुष्पों की कुल जाति प्रकार की संख्या चार भार यानी ४९, २०, ०६, ४३२ है। इसी तरह से फलों, लता एवं काँटों की प्रजातियों की कुल संख्या चार भार, छः भार एवं चार भार समझना चाहिये।

(३६-ख) साधनात्मिका भेद शक्ति 'षोडश भक्ति विधि'

आद्यं तु वैष्णवं प्रोक्तं शङ्खचक्राङ्कणं हरेः
धारणं चोर्ध्वपुण्ड्राणां तन्मन्त्राणां परिग्रहः।
अर्चनं च जपो ध्यानं तन्नाम स्मरणं तथा
कीर्तनं श्रवणं चैव वन्दनं पाद सेवनम्।
तत्पादोदकसेवा च तन्निवेदित भोजनं
तदीयानां च सेवा च द्वादशी व्रतनिष्ठितम्।
तुलसीरोपणं विष्णोर्देवदेवस्य शार्ङ्गिणः
भक्ति षोडशधा प्रोक्ता भववन्ध विमुक्तये।

अर्थात् १. गुरु से शङ्ख चक्राङ्कित होना, २. तिलक धारण, ३. गुरु से मन्त्र ग्रहण, ४. पूजा अर्चना, ५. मन्त्र जाप, ६. भगवत ध्यान, ७. भगवत नाम स्मरण, ८. लीला कीर्तन, ९. भगवत कथा श्रवण, १०. भगवत वंदना, ११. भगवतचरण सेवा, १२. चरणामृत ग्रहण, १३. भगवत प्रसाद ग्रहण, १४. वैष्णव सेवा, १५. व्रत करना, १६. तुलसी सेवा।

अष्टविध भक्ति

मद्भक्तजनवात्सल्यं पूजायां चानुमोदनम्।
स्वयमभ्यर्चनं चैव मदर्थे दम्भवर्जनम्।
मत्कथाश्रवणं प्रीतिः स्वरनेत्रांगेवित्तया।
ममानुसरणं नित्यं यच्च मां नोपजीवति।

अर्थात् १. भक्तों से प्रेम, २. पूजा में प्रसन्नता, ३. अर्चना, ४. वैष्णवों का सम्मान, ५. कथा श्रवण, ६. रोमांच एवं आँसू बहाना, ७. नाम स्मरण, ८. लीलागुण का मनन करते हुए जीवन विताना।

नवविधा भक्ति

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद सेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।
(भा० ७.५.२३)

अर्थात् १. कथा श्रवण, २. लीला कीर्तन, ३. नाम स्मरण, ४. चरण सेवा, ५. पूजा, ६. स्तुति, ७. कैङ्कर्य, ८. मित्रता या कोई सम्बन्ध रखना, ९. आत्मसमर्पण।

मानस की नवधा भक्ति

(अरण्य दो ३४.४ से ३५.३ तक)

प्रथम भगति संतन कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।। (३४.४)
गुरु पदपंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान।।
(दोहा ३५)
मन्त्र जाप मम दृढ़ विश्वासा।
पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।
छठ दम शील विरति बहु करमा।
निरत निरन्तर सज्जन धरमा।। (३५.१)
सातवँ सम मोहि मय जग देखा।
मोते अधिक सन्त पर लेखा।।

आठवँ यथा लाभ संतोषा।
सपनेहुँ नहि देखई पर दोषा।। (३५.२)
नवम सरल सब सन छल हीना।
मम भरोस हिय हरष न दीना।। (३५.३)

(३७) 'उर कछु प्रथम वासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही' (सु० ४८.३)। विभीषण जी की शरणागति का प्रसङ्ग है। विभीषण जी के पूर्व की कौन-सी कामना थी जिसका अन्त हो गया। वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड सर्ग के श्लोक २८ एवं २९ से स्पष्ट है कि भगवान् ने इक्ष्वाकु कुलदेवता अर्थात् श्रीरङ्गनाथ भगवान् को विभीषण जी को देकर लङ्का विदा कर दिया था। रास्ते में कावेरी के निकट भगवान् रुक गये लङ्का नहीं गये। विभीषण जी वहाँ पूजा करने आते थे। पूर्व के जन्मों से ही शरीर छोड़ने पर वैकुण्ठ में जाकर भगवान् के चरण कमल की सेवा की कामना थी—**'तेहि मागेउँ भगवन्त पद कमल अमल अनुराग'** (मानस, बा० १७७)। जब भगवान् राम से साक्षात्कार हुआ तब वैकुण्ठनाथ यानी रामजी का चरणकमल मिल गया और पूर्व की वासना का अन्त हो गया।

(३८) 'भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ। याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तस्थमीश्वरम्' (मानस, बाल० २)। श्रद्धा एवं विश्वास होने पर अन्त:करण में व्याप्त बिना रूप वाले अप्रत्यक्ष ईश्वर को आँखें कैसे देख सकती है। क्या रहस्य है। गुरु के उपदेश में श्रद्धा एवं विश्वास होने पर ईश्वर में भक्ति होती है और भक्ति होने पर भक्त के हृदय वाले व्यापक ब्रह्म मूर्तिमान हो जाते हैं। वन के रास्ते वाल्मीकि जी ने रामजी से कहा—**'तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक'** (अयो० १२७.४)।

(३९) 'जब सठ किन्ह राम कर निन्दा' (मानस, लङ्का० ३१.१)। अङ्गद जी रावण के दरबार में रामजी का दूत बनकर विराजमान हैं। रावण ने भगवान् की निन्दा की। निन्दा का अर्थ यहाँ दोष अर्थात् गलत आरोप लगाना है। रावण ने कहा—**'...बल प्रताप बुद्धि तेज न ताकें'** (लङ्का० ३०.४)। जबकि मानस (बाल० २९१.१) में जनक जी का दूत राजा दशरथ को धनुष यज्ञ का समाचार बताते समय कहता है—**'जाके बल प्रताप के आगे। ससि मलीन रवि सीतल लागे।।** रावण और भी गलत आरोप लगाता गया—**'अगुन अमान विचारि तेहि दीन्ह पिता वनवास। सो दुख अरु जुवती विरह पुनि निसि दिन मम त्रास'** (लङ्का० ३१)। जिनके चरण कमल के लिए ब्रह्मा इन्द्र रुद्र तरसते हैं। उन्हें अमान कहता है। **'जाके डर अति काल डराइ। सो सुर असुर चराचर खाई'** (सु० २१.५)। उनको डरा हुआ कहता है यही मिथ्या दोष है जो निन्दा के समान है।

(४०) 'औरो एक गुपुत मत सबहि कहउँ करजोर। संकर भजन बिना नर भक्ति न पावै मोर' (उ० ४५)। क्या शिवजी के भजन बिना राम भक्ति नहीं मिल सकती है? क्या यही नियम है? इस सन्दर्भ में निम्नाङ्कित बातें ध्यान देने योग्य है—(१) **'तात भगति मम सब सुखमूला। मिलइ जो सन्त होहिं अनुकूला'** (मानस, अर० १५.२)। भगवान् राम लक्ष्मण जी को समझा रहे हैं कि सन्तों के माध्यम से ही हमारी भक्ति मिलती है। ध्रुव एवं प्रह्लाद के उदाहरण इसके प्रमाण हैं। (२) **'अविरल भक्ति विशुद्ध तव श्रुति पुराण जो गाव। जेहि खोजत योगीश मुनि प्रभु प्रसाद जो पाव'** (मानस, उ० ८४क)। कागभुसुण्डी जी ने कहा है कि भगवान् की प्रसन्नता से भक्ति मिलती है। पुन: वे ऐसे ही भक्ति का वर भगवान् से माँगते हैं—**'सोइ निज भक्ति मोहिं प्रभु देहु दया करि राम'** (मानस, उ० ८४ख)। और भगवान् इसकी पुष्टि करते हैं—**'एवमस्तु कहि रघुकुलनायक'** (मानस, उ० ८४.१)। (३) कागभुसुण्डी जी के लिये लोमस ऋषि का भी

ऐसा ही वचन है—**'राम भगति अविरल उर तोरे । बसहि सदा प्रसाद अब मोरे'** (मानस, उ० ११२.८)। सन्त की प्रसन्नता से भक्ति दृढ़ होने का प्रमाण है। (४) गरुड़ जी को कागभुसुण्डी जी ने कहा कि भक्तिरूपी मणि रामजी की कृपा से ही मिलती है। **'सो मनि जद्यपि प्रगट जग अहई । राम कृपा बिनु नहीं कोई लहई'** (मानस, उ० ११९.६)। (५) भक्ति मणि कैसे मिलती है और इसमें सन्त कृपा की कैसे और क्यों आवश्यकता है—**'भाव सहित जो खोजई प्रानी । पाव भगति मनि सब सुख खानी'** (मानस, उ० ११९.८)। **'सब कर फल हरि भगति सुहाई । सो बिनु सन्त न काहूँ पाई'** (१९.९)। **'अस बिचारि जो कर सतसंगा । राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा'** (११९.१०)। राम की कथा सुनने से भक्ति मिलती है—**'मुनि दुर्लभ हरि भगति नर पावहिं बिनहिं प्रयास । जे यह कथा निरन्तर सुनहिं मानि विश्वास'** (मानस, उ० १२६)। (७) भरद्वाज मुनि ने भरत जी से अयोध्या-वासियों की स्वाभाविक भक्ति का सङ्केत किया है—**'राम भगति अब अमिय अगाधू । किन्हेसु सुलभ सुधा सब काहू'** (अयो० २०८.३)। (८) अन्य सभी साधनों से अर्जित पुण्य से भक्ति बदली जाती है जैसा शरभङ्ग जी के साथ हुआ—**'जोग यज्ञ तप ब्रत कीन्हा । प्रभु कह देई भगति वर लीन्हा'** (अर० ७.४)। (९) सुतीक्ष्ण जी स्वाभाविक भक्ति के उदाहरण हैं—**'अविरल प्रेम भक्ति मुनि पाई । प्रभु देखहि तरु ओट लुकाई'** (अर० ९.७)। (१०) जटायु जी ने अविरल भक्ति का वर माँगा—**'अविरल भक्ति माँगी वर गीध गयेउ हरि धाम'** (अर० ३२)। (११) हनुमान जी को सीताजी ने भक्ति का आशीर्वाद दिया—**'भगति प्रताप तेज बल खानी । आशिष दीन्ह रामप्रिय जानी'** (सु० १६.१)। (१२) हनुमान जी ने भगवान् से भी भक्ति माँगी—**'नाथ भगति तब सब सुखदायिनी । देहु कृपा करि सो अनपायनी'** (सु० ३३.१)। (१३) नारद जी ने रामजी से ही भक्ति माँगी—**'राका रजनी भक्ति तब राम नाम सोई सोम । अपर नाम उडगन बिमल बसहु भक्त उर ब्योम । एवमस्तुमुन सन कहेउ....'** (अर० ४२)।

उपर्युक्त सभी प्रमाणों से सिद्ध होता है कि भक्ति का कारण शङ्कर भजन नहीं है बल्कि शङ्कर शब्द **'शम् कल्याणं करोति इति शङ्करः'** अर्थात् राम नाम **'तस्य भजनम् तेन बिना भक्तिः न भवति'** राम नाम के बिना भक्ति नहीं मिलती है। संदर्भित दोहा में 'गुप्त' श्रीरामजी के अवतार का द्योतक है। **'गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गये जान सब कोई'** (बा० ४८)। दोहा का अर्थ है कि शङ्कर अर्थात् कल्याण करने वाला जो हमारा राम नाम है उसके भजन बिना हमारी भक्ति कोई नहीं पा सकता है। यह भी एक गुप्त रहस्य है।

(४१) 'कहिये न सठहि हँठहि हठ सीलहीं । नहिं मन लाय सुनहिं हरि लीलहीं' (उ० १२७.२)। इन चारों से भगवान् की कथा कभी नहीं कहने का क्या रहस्य है। कारण कि जब तक वेद, ब्रह्मा अन्य देवगण तथा मुनि लोग तक सीमित था तो वे लोग उसके माध्यम से भगवत धर्म ही बताते थे; परन्तु जब राक्षस एवं दैत्य लोगों ने भी वेद पढ़ा तो उन लोगों ने पाषण्ड मत का जन्म दिया **'भयउ यथा अहि दूध पिलाये'** (उ० १०५.३) अर्थात् सर्प दूध पीकर विष ही बनाते हैं। इसीलिये रामकथा अनधिकारी के लिये नहीं है वे रामजी को प्राकृत राजपुत्र ही मान लेंगे। **'जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्वतः'** (गी० ४.९)। **'न तस्य प्राकृतमूर्तिः मांसमेदोस्थिसम्भवा'**।

(यहाँ से अन्त तक के सभी प्रसङ्गों पर प्रश्न गोपालपुर निवासी वैद्य माधवाचार्य जी द्वारा पूछे गये थे)

(४२) 'तेहि अवसर तापस एक आवा । तेज

पुंज लघु वयस सुहाबा ।। कवि अलखित गति बेष बिरागी । मन क्रम बचन राम अनुरागी' (अयो० १०९.४)। भगवान् के जङ्गल के रास्ते भरद्वाज जी के दर्शन के बाद आगे की ओर चित्रकूट की तरफ जा रहे हैं। रास्ते में कौन तपस्वी मिलने आये यही रहस्य है। कोई कोई कहते हैं कि यह चौपाई क्षेपक है जो मूल में नहीं थे। कुछ अन्य का कहना है कि तापस हनुमान जी थे तो कुछ कहते हैं अग्नि तापस वेष में आये थे। वास्तविक रहस्य है कि तुलसीदास जी के क्षेत्र से होते हुए भगवान् वन के रास्ते से जा रहे थे तो तुलसीदास जी ने अपने पिता का मानसिक स्मरण किया और वे भगवान् के दर्शन स्वागत को प्रकट हो गये। पिताजी तो वैकुण्ठ में सदा किशोरावस्था में रहने वाले मुक्तों की तरह भगवद् कैङ्कर्य में थे, इसीलिये उसी रूप में आये और भगवान् का दर्शन किया। जैसे प्रह्लाद जी ने अपने पिता के लिये भी कल्याण माँगा तो भगवान् ने **'...कुले जातो भवान् वै कुल पावनः'** (भा० ७.१०.१८)। उनके कारण सम्पूर्ण कुल को पावन पवित्र कर दिया उसी तरह तुलसीदास जी के कारण पिताजी उनके ईच्छा के अनुसार रामजी के पास आ गये। कुल की प्रशंसा का दोष नहीं लगे इसलिये तुलसीदास जी ने नाम नहीं खोला।

(४३) 'मन्त्री विकल विलोकि निषादू । कहि न जाय जस भयउ बिषादू' (अयो० १४१.१)। **'तुम पण्डित परमारथ ज्ञाता । धरहू धीर लखि विमुख विधाता ।। विविध कथा कही कही मृदु वानी । रथ बैठारेउ बरबस आनी'** (अयो० १४२.१-२)। जब भगवान् नहीं लोटे तब सुमन्त जी को निषादराज ने गङ्गा किनारे अनेकों कथा कह समझाकर लौटाया। वे कथायें क्या थीं यही रहस्य है। अज्ञानी लोग सुख में सुखी और दुःख में दुःखी होते हैं—**'सुख हरषहि जड़ दुख बिलगाही । दोउ सम धीर धरहि मनमाही'** (अयो० १४९.४)। राजा सगर ने एक ही साथ साठ हजार पुत्र खोकर भी धैर्य नहीं खोया। राजा हरिश्चन्द्र सत्य से विचलित नहीं हुए। राजा मयूरध्वज ने अपने हाथ अपने पुत्र का मस्तक चीर डाला। पिता की आज्ञा पूरी कर रामजी चौदह साल वन में बिताकर लौटेंगे। अतः आप धैर्य धरें एवं अयोध्या लौट जायें। रामजी को दुःख का द्वन्द नहीं है। जंगल में उनको कोई दुःख नहीं है। वे परमात्मा है—**'राम ब्रह्म व्यापक जग जाना । परमानन्द परेस पुराना'** (बा० ११५.४)। **सब कर परम प्रकाशक जोई । राम अनादि अवधपति सोई'** (बा० ११६.३)।

(४४) 'अंगद कहे जाउँ मैं पारा । जिय संशय कछु फिरती बारा' (कि० २९.१)। यहाँ 'कछु' शब्द के अनेकों भाव हैं। कहते हैं कि रावण एवं बालि में पूर्व में तो वैर था; परन्तु बाद में मित्रता हो गयी थी। तारा एवं मन्दोदरी में भी आपस में बहुत प्रेम था। अङ्गद को सन्देह हुआ कि कहीं उनके स्नेह में मैं वहाँ से लौट नहीं सकूँ। ऐसी भी कथा है कि अक्षयकुमार को शाप था कि समुद्र के उत्तर जाने पर अङ्गद के हाथ उसका वध होगा। इसी तरह अङ्गद के लिये था कि समुद्र के दक्षिण अक्षय उन्हें मार देगा। एक और बात है कि सीताजी की खोज के लिये चलते समय रामजी ने अङ्गूठी हनुमान जी को दी थी तब सागर पार जाना मेरा अनाधिकार प्रयास एवं प्रयत्न है—**'पाछे पवनतनय सिर नावा । जानि काज प्रभु निकट बुलावा ।। परसा सीस सरोरुह पानी । कर मुद्रिका दीन्ह जन जानी ।। बहु प्रकार सीतहि समुझायहु । कहि बल विरह वेति तुम आयहु'** (कि० २२.५-६)।

(४५) 'नर बानर हि संग कहु कैसे । कही कथा संगति भये जैसे' (सु० १२.६)। यह चौथाई अशोकवाटिका में सीताजी एवं हनुमान जी के संवाद का है। इस चौपाई के पूर्व चौपाई ३ में ही है **'..... । आदिहु ते सब कथा सुनाई'** । तब नर

एवं बानर का आपस में मिलन कैसे हुआ इसका प्रश्न कैसे उठा। यह हनुमान जी की परीक्षा का समय है। नर एवं बानर शब्द का प्रयोग शुद्ध हृदय से हुआ है कोई दुर्भावना नहीं है। हनुमान जी ने अपने जन्म की कथा सुनाई जो माता अञ्जना ने उन्हें बतायी थी। उनके पिता को सन्तान की सम्भावना नहीं थी। भगवान् वेङ्कटेश्वर ने अञ्जना को दो हजार वर्ष तक आराधना कराने के बाद हनुमान जैसा एक पुत्र दिया। अञ्जना माता को अपने पर गर्व था कि कयाधु, सुमित्रा तथा सुनीति की तरह उनका भी पुत्र भगवद् भक्त है। किसी कुँए में बच्चे को गिर जाने के बाद उसकी माता उसको बचाने हेतु कुँए में कूद जाती है। उसी तरह भगवान् जीव के उद्धार हेतु दिव्यसूरि सेवित परमव्योम त्रिपादविभूति छोड़कर अवधपुरी में अवतार लिये— **'...देत ईश बिनु हेतु सनेही'** (उ० ४३.३)। जीवों पर भगवान् का प्रेम अकारण स्वयंमेव ही होता है। रामजी, विष्णु तथा हनुमान जी जो नित्य पार्षद हैं। अङ्गद जी ने रावण को डाँटा **'कस रे सठ हनुमान कपि...'** (लङ्का० २६) अर्थात् हनुमान कोई साधारण वानर नहीं हैं वे भगवान् के परमप्रिय पार्षद हैं।

●

एक नारायण ही उपास्य क्यों?

इस पुस्तक के प्रणयन का वर्ष पुस्तक के अन्त में दिये गये एक श्लोक के अनुसार ई० सन् १९५४ आकलित किया जा सकता है। प्रस्तुत सार सङ्क्षेप ई० सन् १९८७ में श्रीपराङ्कुश संस्कृत संस्कृति संरक्षा परिषद्, हुलासगंज से प्रकाशित द्वितीय संस्करण पर आधारित है। मूल विषय को आलोकित करते हुए पुस्तक के प्रारम्भिक बारह पृष्ठों में वर्तमान स्वामीजी श्रीरङ्गरामानुजाचार्य जी के प्रकाशकीय एवं प्राक्कथन दिये गये हैं। बाद में २७ पृष्ठों में मूल विषयवस्तु के एकमात्र प्रश्न **'एक नारायण ही उपास्य क्यों?'** के समाधान में जपमाला १०८ दाने की तरह **'१०८ समाधान-सुमन'** की उत्कृष्ट प्रस्तुति है।

(इस प्रस्तुति को **'पराङ्कुश-स्मृति'** कही जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। श्रीस्वामी जी महाराज की एक अन्य पुस्तक **'देवतान्तरों की आराधना क्यों नहीं?'** इस पुस्तक का पूरक है या यों कहें कि दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं और उसका भी सार संक्षेप सभी पुस्तकों के बाद श्रीस्वामी जी महाराज की 16वीं पुस्तक के रूप में देखा जा सकता है।)

समाधान-सुमन 1

शास्त्र के वचन भगवान् की आज्ञा हैं एवं जो शास्त्रों का उल्लङ्घन करते हैं वे भगवद् भक्त तथा वैष्णव कहलाने के अधिकारी नहीं हैं। मानव कल्याण के लिये भगवान् की आज्ञा है—

मन्मनाभव मद्भक्तो मद्याजी माम् नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः।।

(गी० ९.३४)

अर्थात् 'मुझमें मन लगाकर मेरी पूजा तथा नमस्कार करके मुझे प्राप्त करता है'।

अनन्याश्चिन्तयन्तो माम् ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

(गी० ९.२२)

अर्थात् 'अनन्यभाव से अर्थात् अन्य देवताओं को त्यागकर मुझमें लगे रहने वाले सब आवश्यक पदार्थ प्राप्त करते हैं और मैं उनकी रक्षा करता हूँ'।

अनन्येनैवयोगेन मां ध्यायन्त उपासते।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।

(गी० १२.६-७)

अर्थात् 'अनन्यभाव से मेरी उपासना करने वाले जन्म मृत्यु के सागर को पार कर जाते हैं'।

सांसारिक बन्धन रूपी कामनाओं की पूर्ति वाले देवताओं से उदासीन रहते हुए भगवान् में ही मनोयोग से लगा रहना शास्त्र की आज्ञा है।

समाधान-सुमन 2

दैवी हि एषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

(गी० ७.१४)

अर्थात् 'भगवान् कहते हैं मेरी शरणागति मात्र से ही संसार की कठिन माया को पार करोगे'। ऐसे भक्त का कभी विनाश नहीं होता **'न मे भक्तः प्रणश्यति'** (गी० ९.३१)। एक ही नारायण की उपासना से ही माया बन्धन से छूट सकते हैं।

समाधान-सुमन 3

मानव योनि छोड़कर अन्य योनियाँ कर्मों के भोग के लिये मिलता है। मानव शरीर भगवान् की निर्हेतुकी कृपा से मिलता है, जिसका एकमात्र उद्देश्य इस शरीर को मन एवं इन्द्रियों के साथ भगवान् की प्राप्ति में लगा देने का है—

विचित्रा देह सम्पत्तिरीश्वराय निवेदितुम्।
पूर्वमेव कृता ब्रह्मन् हस्तपादादि संयुतम्।।

समाधान-सुमन 4

जड़ चेतन रूपी समस्त जगत् नारायण का शरीर है तथा नारायण शरीरी अर्थात् आत्मा हैं। अतः यह मानव शरीर उन्हीं का होने के कारण उन्हीं के लिये है—**'तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम्'**।

समाधान-सुमन 5

शरणागत की रक्षा करना तथा सब दोष भूलकर दया करना भगवान् नारायण के स्वाभाविक गुण है जिसे शरण्य एवं वात्सल्य गुण कहते हैं—**'व्रजामि शरणं विष्णुं शरणागतवत्सलम्'**।

समाधान-सुमन 6

देह, इन्द्रिय, मन, प्राण एवं बुद्धि से आत्मा पृथक् एवं विलक्षण है। यह परमात्मा का शेष एवं भोग्य वस्तु है। शरीर में आत्मबुद्धि रखते हुए नारायण के अतिरिक्त अन्य देवता की उपासना में लगने वाले को चोर एवं आत्मापहारी कहा है। प्रसिद्ध वैष्णव सन्त श्रीलोकाचारी स्वामी ने लिखा है कि अन्य देवों को भगवान् के समान मानना तथा रामजी, भगवान् कृष्ण में मानव भाव रखना एवं अर्चा-मूर्ति में काठ पत्थर या धातु आदि का भाव रखना भगवतापचार है, जो आत्मापहार के समतुल्य है।

समाधान-सुमन 7

समस्त सृष्टि का सृजन, पालन एवं संहार के मूल कारण नारायण ही हैं। इसी कारण से शास्त्रों ने नारायण का ही पूजन ध्यानादि करने की आज्ञा दी है—**'कारणन्तु ध्येयम्'** (ब्र०सू० १.४.१४)। **'तज्जलानीति शान्त उपासीत'**।

समाधान-सुमन 8

वेद में नारायण को ही परतत्व कहा गया है। प्रलयकाल में नारायण ही शेष रहते हैं। जगत् में सर्वान्तर्यामी एवं सर्वव्यापक नारायण ही हैं—

नारायणः परब्रह्म तत्वं नारायणः परः।
नारायणः परोज्योतिरात्मा नारायणः परः।।

(विष्णु सूक्त नारायण अनुवाक्)

प्रलयकाल में नाम रूप से रहित होकर समस्त सृष्टि नारायण के पेट में रहती है—**'अत्ताचराचर ग्रहणात्'**।

समाधान-सुमन 9

नारायण की उपासना अति सुलभ है। स्मरण मात्र से ही ये जीव का कल्याण करते हैं—**'स्मरतः पादकमलमात्मानपि यच्छति'**। एक दल तुलसी ही इनकी सेवा है—**'जानत सुदामा भाई हमरो सुभाउ तुम, एक दल तुलसी में जाउँ मैं बिकाउ हो'** (भगवद्

पराङ्कुशाचार्य विरचित मित्र सुदामा कृष्ण)। श्रीयामुनाचार्य ने कहा है कि भगवान् के चरणों में एकबार कुछ भी अर्पित कर देने पर सकल अमङ्गल का नाश हो जाता है—**'त्वदङ्घ्रिमुद्दिश्य कदापि केनचित् यथा तथावाऽपि सकृत कृतोञ्जलिः । तदेव मुष्णात्यशुभान्यशेषतः शुभानि पुष्णाति न जातु हीयते'** (आलवन्दार) स्तोत्र रत्न २८। प्रह्लाद जी ने साथियों को बताया कि नारायण की उपासना में कोई परिश्रम नहीं है—**'न हि अच्युतं प्रीणयतो बहु आयासः..'** (भा० ७.६.१९)।

समाधान-सुमन 10

एक बार देवताओं ने विष्णु भगवान् एवं शङ्करजी में कौन बलवान् है ऐसा जानने के लिये दोनों को लड़ा दिया। लड़ाई में भगवान् विष्णु ने शिवजी के धनुष को शिथिल कर दिया। देवताओं एवं ऋषियों ने विष्णु भगवान् को शङ्कर जी से श्रेष्ठ माना—**'अधिकं मेनिरे विष्णुं देवाः सर्षिगणास्तदा'** (वा०रा०, बाल० ७५.२०)।

समाधान-सुमन 11

वेदे रामायणे चैव भारते भरतर्षभ ।
आदौ मध्ये तथा चान्ते सर्वत्र हरिः गीयते ।।

समस्त धर्मशास्त्रों में सर्वत्र भगवान् का ही गुणगान है तथा अन्य देवों की चर्चा गौण रूप से की गयी है। अगर अन्य देव उपास्य होते तब उनका प्रधान रूप से उल्लेख होता।

समाधान-सुमन 12

'देवदेवो हरिः पिता' । '...देवदेवो जनार्दनः' (भा० ३.७.२०)। **'तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां च परमं च दैवतम्'** नारायण सभी देवों के देव हैं तथा ईश्वरों के ईश्वर हैं।

समाधान-सुमन 13

एक नारायण ही हैं जिनके चरणकमल से गङ्गा निकलकर जगत् का कल्याण कर रहीं हैं—**यत् शौच निःसृतसरित्प्रवोदकेन तीर्थेन मूर्धन्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत्'** (भा० ३.२८.२२) अर्थात् 'भगवान् के चरणोदक गङ्गा को धारण करने के ही कारण शिव पवित्र हुए'। किसी अन्य देवता के चरण से कोई भी कल्याणकारी नदी नहीं निकली है।

समाधान-सुमन 14

बाणशय्या पर पड़े भीष्म पितामह ने कहा कि नारायण पवित्रों में अति पवित्र एवं सर्वमङ्गलों के मङ्गल हैं—**'पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानाञ्च मङ्गलम्'** (श्रीविष्णुसहस्त्रनाम)।

समाधान-सुमन 15

भगवान् का नाम स्मरण मन्त्र की त्रुटि तथा देश काल की न्यूनता का पूरक है—

मन्त्रतः तन्त्रतश्छिद्रं देशकालार्हवस्तुतः ।
सर्वं करोति निश्छिद्रं नाम सङ्कीर्तनं तव ।।

एक बार नारायण नाम लेकर अजामिल सब पापों से मुक्त हो गया।

समाधान-सुमन 16

भगवान् के आयुधों के संयोग से कल्याण होता है जो किसी अन्य देवों के साथ नहीं होता। उनके आयुध को प्रेम से धारण करे या कोपभाजन हो सर्वदा कल्याणप्रद होता है। चक्राङ्कित वैष्णव कल्याणभाजन होते हैं। भगवान् के चक्र के कोपभाजन होकर शिशुपाल मुक्त हो गया।

समाधान-सुमन 17

सभी धर्मावलम्बी मृतक के कल्याण हेतु श्राद्धादि पिण्डदान करते हैं। किसी भी देव का उपासक हो पिण्ड के पश्चात्—

अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः ।
अक्षय्य पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदोभव ।।

इसी तरह—

अन्नहीनं क्रियाहीनं वस्तुहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वमच्छिद्रमस्तु हरेर्नामानुवर्तनात् ।।

इससे यह सिद्ध होता है कि तर्पण प्रार्थना नारायण नाम से करने पर ही प्रेतात्मा का कल्याण सम्भव है।

समाधान-सुमन 18

भगवान् का एक नाम 'अविज्ञाता' है अर्थात् जो शरणार्थी के अपराध को भूल जाता है। किसी अन्य देवता के साथ ऐसी स्थिति नहीं है।

समाधान-सुमन 19

धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष–सब के फल देने वाले एक मात्र भगवान् नारायण ही हैं। चारों को अलग अलग सकाम या निष्काम भाव से जो भी चाह रहती है सबकी पूर्ति नारायण के अतिरिक्त अन्य कोई करने वाले नहीं है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ।।
(भा० २.३.१०)

समाधान-सुमन 20

कार्यसिद्धि हेतु सभी धार्मिक कृत्यों का शुभारम्भ **'ॐ विष्णुः विष्णुः विष्णुः नमः परमात्मने'** के सङ्कल्प से होता है। इसके बिना सङ्कल्प अपूर्ण रहता है।

समाधान-सुमन 21

भगवत् प्राप्ति के लिये उनकी शरणागति ही उपाय मात्र है—**'तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था अयनाय विद्यते'** । भगवान् कृष्ण ने भी संसार सागर से उद्धार हेतु अपनी शरणागति ही बतायी है—**'मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते'** (गी० ७.१४)।

समाधान-सुमन 22

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६ में अजामिल की कथा है। यमदूतों ने यमराज से पापियों का लक्षण पूछा जिन्हें उनकी मृत्यु के बाद धरती से यमलोग में लाना था। यमराज ने वैष्णवों को छूने से मना कर दिया और बताया कि मैं केवल अवैष्णवों के लिये ही अधिकृत हूँ।

समाधान-सुमन 23

भगवान् में दृढ़ विश्वास होने के कारण भगवान् के भक्त को किसी अन्य से कोई भय नहीं होता। राजा रहूगण ने जड़भरत जी से कहा—**'नाहं विशंके सुरराजवज्रान् न त्रयक्षशूलान् न यमस्य दण्डात् । न अग्नि अर्क सोम अनिल वित्तप अस्त्रात् शङ्के भृशं ब्रह्मविदोऽवमानात्'** (भा० ५.१०.१७)। इन्द्र के वज्र शङ्कर के त्रिशूल आग, सूर्य, वायु, धनवान एवं अस्त्र मुझे भयभीत नहीं करते; परन्तु भगवान् के भक्त के अपमान से मैं भयभीत हूँ। भगवान् की उपासना की इतनी महिमा है।

समाधान-सुमन 24

सङ्कल्प मन्त्र–**ॐ विष्णुः विष्णुः विष्णुः नमः परमात्मने'** में भगवान् के नाम का ही महात्म्य है।

समाधान-सुमन 25

'नान्याः पन्था अयनाय विद्यते' (पु.सू)। मोक्ष यानी भगवत्प्राप्ति के लिये भगवान् को छोड़कर कोई अन्य उपाय नहीं है।

समाधान-सुमन 26

'प्रभुरहमन्यनराणां न वैष्णवानाम्' । वैष्णवों का मैं नियन्ता नहीं हूँ ऐसा यमराज ने अपने दूतों से कहा। नारायण उपासक को यम का भय नहीं है।

समाधान-सुमन 27

'आनन्द ब्रह्मणो विद्वान् न विभेति कुतश्चन्' । भगवद्भक्त किसी से नहीं डरते।

समाधान-सुमन 28

राजा खट्वाङ्ग ने भगवान् में मन लगाकर दो

घड़ी में ही मोक्ष पा लिया था। ज्ञानी लोग सबकुछ भगवान् को अर्पित कर उन्हें शीघ्र प्राप्त कर लेते हैं—**'क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः। सन्यस्य संयात्यभयं हरेः पदम्'**।

समाधान-सुमन 29

गर्भ में एकमात्र भगवान् ही रक्षा करते हैं—**'स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे'** (भा० ७.२.३८)। विचार करें कि ऐसा उपास्य और कौन हो सकता है।

समाधान-सुमन 30

भगवान् कर्ता कर्मादि के धारक हैं–**'अखिल-कारक शक्तिधरः'**।

समाधान-सुमन 31

नारायण ही वाच्य तथा वाचक हैं—**'सर्ववाच्य-वाचकतया भगवान् ब्रह्मरूपधृक्'**।

समाधान-सुमन 32

केवल नारायण का ज्ञान होने से समस्त वस्तु का ज्ञान हो जाता है—**'एकेन विज्ञानेन सर्वं विज्ञातं भवति'**।

समाधान-सुमन 33

यस्य प्रसन्नो भगवान् गुणैः मैत्र्यादिभिः हरिः।
तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नम् आपः इव स्वयम्।।

(भागवत ४.९.४७)

भगवान् के प्रसन्न होने से समस्त देवगण नतमस्तक होते हैं।

समाधान-सुमन 34

जैसे भूने हुए या उबाले हुए धान से अङ्कुर नहीं निकलते उसी तरह भगवान् को भजने वाले पुनः जन्म नहीं लेते।

समाधान-सुमन 35

ब्राह्मणों के तथा देवताओं के देव एवं आत्मा नारायण ही हैं—**'विप्राणां देवदैवानाम् भगवानात्म-दैवतम्'**।

समाधान-सुमन 36

ब्रह्मा ने कहा है कि मेरे तथा सकल लोकों के गुरु नारायण हीं हैं—**'ममाप्यखिललोकानां गुरुर्नारायणो गुरु'**।

समाधान-सुमन 37

सबों के भीतर तथा बाहर नारायण ही व्याप्त हैं—**'अन्तर्बहिश्च तत्सर्वं व्याप्य नारायणः स्थितिः'** (विष्णु सूक्त नारायण अनुवाक्)।

समाधान-सुमन 38

भगवत् शब्द वाच्य नारायण ही हैं तथा यह प्राकृत गुणों से मुक्त हैं—**'भगवत् शब्दवाच्यानि विना हेयैर्गुणादिभिः'। 'मैत्रेये भगवत् शब्दः वासुदेवे न अन्यगः'**।

समाधान-सुमन 39

भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये भगवान् आतुर रहते हैं—**'शतं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रह कातरम्'** (भा० ३.२८.१७)।

समाधान-सुमन 40

ब्रह्मा रुद्र इन्द्रादि लक्ष्मी जी की कटाक्ष से ऐश्वर्यवान् होते हैं और वही लक्ष्मी जी भगवान् के समीप रहने से 'श्री' कहलाती हैं। ऐसे भगवान् को छोड़कर और कौन उपास्य हो सकता है।

समाधान-सुमन 41

अपने आश्रितों के दोष के लिये भगवान् ही प्रायश्चित करते हैं। जैसे विभीषण द्वारा की गयी ब्रह्महत्या तथा अम्बरीष के कारण दस अवतार।

समाधान-सुमन 42

जब सभी देवों को अर्पित नमस्कार भगवान् केशव को जाता है तब केशव की ही उपासना श्रेष्ठतम है—**'सर्व देवनमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति'**। जैसे सभी जल की गति समुद्र है और उसके बाहर का जल व्यर्थ ही सूख जाता है; क्योंकि जो समुद्र

में पहुँचता है वह समुद्र ही हो जाता है।

समाधान-सुमन 43

समस्त जीव के पालन हेतु ही विष्णु भगवान् का अवतार होता है। मानव पालन की अपेक्षा करता है, अत: विष्णु की उपासना श्रेष्ठ है।

समाधान-सुमन 44

स्नान के समय भगवान् नारायण ही स्मरणीय हैं।

समाधान-सुमन 45

वस्त्र धारण करने के समय नारायण ही स्मरणीय हैं।

समाधान-सुमन 46

पवित्र होने के लिये नारायण ही स्मरणीय हैं—

अपवित्रो पवित्रः वा सर्वावस्थांगतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यान्तरः शुचिः ।।

(पद्मपुराण, पाताल ८०.११)

समाधान-सुमन 47

सूर्य को अर्घ्य देने में भी नारायण का ही ध्यान करने को बताया है—**'ध्यात्वा नारायणं देवं रविमण्डलमध्यगम्'**।

समाधान-सुमन 48

सभी शब्दों का मूलकारण ॐ नारायण का ही नाम है—**'ओङ्कारात् प्रभवा वेदा...'**।

समाधान-सुमन 49

देव, असुर, मानव, शूद्र, नारी आदि सब योनियों को सुलभ होने से नारायण ही सबके उद्धारक हैं।

समाधान-सुमन 50

सबों को निवृत्ति प्रदान करते हैं—**'यद्गत्वा न निवर्तन्ते....'** (गीता १५.६)।

समाधान-सुमन 51

नारायण नाम के उच्चारण से सब पापों का प्रायश्चित हो जाता है।

समाधान-सुमन 52

सभी जीवों के परम स्वार्थ नारायण ही हैं—**'पुंसः स्वार्थपरः स्मृतः'। 'स्वारथ सर्व जीव कर येहा। मन क्रम वचन राम पद नेहा'** (मानस, उ० ९५)।

समाधान-सुमन 53

गोविन्द की एकान्तिक भक्ति का ही उपदेश है—**'एकान्त भक्ति गोविन्दे सर्वत्र तदीक्षणम्'**।

समाधान-सुमन 54

भक्तों की चाह वाली वस्तु देने वाले कल्पवृक्ष नारायण ही हैं—**'प्रपन्न पारिजाताय....'। 'देव देवतरू सरिस सुभाउ'** (मानस, अयो० २६६.४)।

समाधान-सुमन 55

नारायण रस स्वरूप हैं—**'अतो रसो वै सः'**। जीव भगवान् को प्राप्त कर ब्रह्मानन्द के रस में डूब जाता है—**'अतः आनन्दमयो अभ्यासात्'** (ब्र०सू० १.१.१२)।

समाधान-सुमन 56

किसी भी भाव से नारायण की ही उपासना श्रेष्ठ है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ।।

(भा० २.३.१०)।

समाधान-सुमन 57

महात्मनः तु मां पार्थं दैवी प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्ति अनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ।।

(गीता ९.१३)

दैवी प्रकृति वाले ही मेरे अनन्य भक्त होते हैं तथा वे महात्मा कहे जाते हैं। नारायण के उपासक दैवी प्रकृति के होते हैं।

समाधान-सुमन 58

'गोविन्देति यदा कन्दत् कृष्णा मां दूरवासिनम्।

ऋणं प्रवृद्धमिव मे हृदयन्नापि सर्पति' । द्रौपदी ने जब गोविन्द नाम लिया तब भगवान् ने उनका कल्याण किया; परन्तु भगवान् सङ्कोच में रहते थे कि दुःशासन का गला या हाथ क्यों नहीं काट लिया था। नाम लेने के कारण भगवान् भक्त के ऋणी हो जाते हैं।

समाधान-सुमन 59

भगवान् देवों के प्राण होने से एक मात्र उपास्य हैं—**'विष्णुः प्राणाः दिवौकसाम्'** ।

समाधान-सुमन 60

भगवान् कृष्ण के दिव्यरूप में अर्जुन ने ब्रह्मा रुद्रादि देवों ऋषिगण एवं समस्त सृष्टि का दर्शन किया था—**'पश्यामि देवान् तब देह देहे....। ऋषींश्च सर्वान्...।।** (गी० ११.१५)। भगवान् सब के मूल हैं।

समाधान-सुमन 61

'रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टेः...' । शत्रु को भगवान् पुत्रवत् स्नेह देते हैं।

समाधान-सुमन 62

दण्ड हेतु यमलोक भेजकर भगवान् पाप से शुद्ध करते हैं।

समाधान-सुमन 63

पेड़ के जड़ में दिया जल सम्पूर्ण वृक्ष को पुष्ट करता है। मुख में दिये गये भोजन से समस्त देह संतुष्ट होता है उसी तरह भगवान् को अर्पित वस्तु सबको प्राप्त होता है। सुदामा जी का चूड़ा खाते समय भगवान् ने कहा—**'तर्पयन्ति अङ्ग मां विश्वम् एते पृथक्तण्डुलाः'** (भा० १०.८१.९)। मेरे अङ्गों में स्थित समस्त ब्रह्माण्ड को यह तृप्त कर रहा है; क्योंकि भगवान् के उदर में समस्त जीव अपने संस्कार के साथ पृथक्-पृथक् रहते हैं—**'यस्य-कुक्षाविदं सर्वात्म भाति यथा तथा'** । भगवान् के बाहर भीतर समस्त ब्रह्माण्ड व्याप्त है—**'ब्रह्माण्ड निकाया निर्मितमाया रोम रोम प्रतिवेद कहै'** (मानस, बा० १९१.छं३)। दुर्योधन के बहकावे में दुर्वासा पाण्डवों को जाँचने पहुँचे तथा भोजन की चाह करते हुए स्नान को चले गये। द्रौपदी के यहाँ पाण्डव भोजन कर चुके थे तथा बर्तन भी साफ कर रख दिया गया था। दुर्वासा के साथ ऋषि समूह के स्वागत में कमी देख द्रौपदी घबरायी। स्मरण करते ही भगवान् पहुँच गये तथा भूखे होने के कारण कुछ खाने को माँगा। द्रौपदी और लज्जित हो गयी तथा उन्हें बताया कि अब बर्तन तो खाली है। भगवान् ने खाली बर्तन का निरीक्षण किया तथा उसमें सटी हुई साग की एक पत्ती निकाल कर खा लिया और तृप्त हो गये। स्नान करते हुए समस्त ऋषिगण के साथ दुर्वासा भी तृप्त हो गये तथा भीम के डर से भाग निकले—

शाकान्नशिष्टमुपभुज्य यतः त्रिलोकान्।
तृप्तिममंस्त सलिले विनिमग्नसङ्घः।।

पद्मपुराण उत्तर खण्ड के अन्तिम अध्याय की कथा है—**'त्रिषु देवेषु को महान्'** अर्थात् ब्रह्मा, शङ्कर तथा विष्णु में कौन श्रेष्ठ हैं? इस उद्देश्य से भृगु ऋषि पहले शङ्कर जी के पास गये। द्वारपाल ने शङ्कर जी को पार्वती देवी के साथ निजी कक्ष में रहने के कारण उन्हें भीतर जाने से मना कर दिया—**'देव्या क्रीडति शङ्करः'** (प.पु उत्तर २८२.३०)। परन्तु वे माने नहीं। निजी सहवास में व्यवधान देख शङ्कर जी स्वयं त्रिशूल लेकर भृगु जी को मारने दौड़े। भृगु जी ने उन्हें शाप देते हुए कहा कि आप ब्राह्मणों के पूज्य नहीं रहेंगे। वहाँ से वे ब्रह्मा के पास गये। रजोगुणी अभिमानवश ब्रह्मा ने भृगुजी का स्वागत हाल नहीं पूछा। कुपित हो भृगु जी ने उन्हें भी अपूज्य होने का शाप दिया तथा कोपावेश में ही विष्णु भगवान् के पास जाकर उनकी छाती पर पैर से प्रहार कर दिया। भगवान् ने अपने को ब्राह्मण के चरणधूल से पवित्र होने का सौभाग्य

बताया—**'पुनन्तु मां ब्राह्मणपादपांसवः'** (प पु उत्तर २८२.५१) तथा यह भी कहा कि हमारे साथ समस्त लोक पवित्र हो—**'पुनीहि सह मां लोकान् लोकपालांश्च मद्गतान्'**। यह सिद्ध करता है कि भगवान् के प्रति किया हुआ सबों को प्राप्त हो जाता है। अतः उनकी ही उपासना सुगम है।

समाधान-सुमन 64

पापी एवं अधम भगवान् के नहीं होते हैं—**'न मां दुष्कृतिनो मूढा प्रपद्यन्ते नराधमाः'** (गी० ७.१५)। अतः इस दोष से मुक्ति के लिये भगवान् की ही उपासना श्रेष्ठ है।

समाधान-सुमन 65

ज्ञान नष्ट होने पर ही अन्य देवता की उपासना करते हैं—**'कामैः तैः तैः हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवता'** (गी० ७.२०)।

समाधान-सुमन 66

अन्य देवों की उपासना से नाशवान फल प्राप्त होता है—

ब्रह्माणं शितकण्ठश्च याश्चान्य देवताः स्मृताः।
प्रतिबुद्धा न सेवन्ते यस्मात्परिमितं फलम्।।

समाधान-सुमन 67

पुण्य क्षीण होते ही देवता भी धरती के जीव बन जाते हैं—**'क्षीणेपुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति'** (गी० ९.२१)।

समाधान-सुमन 68

भृगु ऋषि ने भगवान् से कहा कि आपको छोड़कर दूसरे देवता की पूजा करने वाले पापी एवं पाषण्डी हैं। वेदज्ञ ब्राह्मणों से एक मात्र भगवान् ही पूज्य हैं।

समाधान-सुमन 69

मोक्ष की इच्छा रखने वाले मुमुक्षुगण अन्य देवों को छोड़कर भगवान् की उपासना करते हैं।

समाधान-सुमन 70

अन्य देवों को देखना उनकी पूजा करना तथा उनके मन्दिरों में जाना तथा प्रसाद लेना मना है—

नान्यं देवन्तु वीक्षते ब्राह्मणो न च पूजयेत्।
नान्यं प्रसादं भुञ्जीत् न अन्यस्य आयतनं विशेत्।।

समाधान-सुमन 71

पुण्यकर्म करने वाले पाप नष्ट होने पर अनन्यभाव से मेरी पूजा करते हैं—

येषां तु अन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्।
ते द्वन्दमोह निर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः।।
(गी० ७.२८)

समाधान-सुमन 72

प्रेमपूर्वक भक्ति करने वाले अनन्य भक्त को भगवान् अपनी प्राप्ति का उपाय बताते हैं—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन माम् उपयान्ति ते।।
(गी० १०.१०)

समाधान-सुमन 73

अनन्याश्चिन्तयन्तो माम् ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।
(गी० ९.२२)

अपने अनन्य भक्त के क्षेमकुशल का भार भगवान् स्वयं लेते हैं।

समाधान-सुमन 74

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।
(गी० ८.१४)

अनन्यता से भगवान् सुलभ हो जाते हैं।

समाधान-सुमन 75

वेद भगवान् को स्वतन्त्र कहते हैं; परन्तु भक्त वत्सलतावश वे भक्त के अधीन रहते हैं—

अनन्याधीनः त्वं तव किल जगुर्वैदिकगिरः ।
पराधीनं त्वान्तु प्रणत परतन्त्रं मनुमहे ।।

समाधान-सुमन 76

एक देवता की पूजा से एकाबार में एक ही वस्तु मिलती है; परन्तु परमात्मा की पूजा से सब कुछ एक ही बार मिल जाता है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजते पुरुषं परम् ।।
(भा० २.३.१०)

समाधान-सुमन 77

भक्त जिस दोष पर विजय प्राप्त नहीं कर पाता है। भगवान् उस दोष को छोड़कर उसके गुण को देखते हुए उसे अपनाते हैं—**'अजित दोष गृहीत गुणः'** ।

समाधान-सुमन 78

भक्त से नौ प्रकार का सम्बन्ध मानकर भगवान् उसे अपनाते हैं—**'पिता च रक्षकः शेषी भर्त्ता गेयो रमापतिः स्वाम्याधारो ममात्मा च भोक्ता चाद्यमनूदितः'। 'मोहि तोहि नातो अनेक प्रभु अब न तजे बनि आवै'।** माधव अब न द्रवहु केहि लेखे। ....बहुत नात रघुनाथ मोहि मोहि अब न तजे बनि आवै। (विनयपत्रिका ११३.३)। **'मोहि तोहि नातो अनेक जो भावे ।** तू दयालु दीन हौं तू दानी हैं भिखारी। ...तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावै....। (विनयपत्रिका ७९.३)।

समाधान-सुमन 79

मोती एवं धागे की तरह परमात्मा से ही सब गुंथे हुए हैं—**'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणाइव'** (गी० ७.७)।

समाधान-सुमन 80

भगवद्भक्त को देवता, पितृ, भूत, पिशाचादि सभी शान्ति एवं शुभ फल देते हैं। उसके यहाँ लक्ष्मी का स्थिर निवास रहता है—**'कुर्वन्ति शान्तिः विवुधाः प्रहृष्टाः ।.....। ब्रह्मादयोः देवगणाः प्रसन्नाः । लक्ष्मी स्थिरा तिष्ठति मन्दिरे च । गोविन्द-भक्तिं वहतां नराणाम्'** ।

समाधान-सुमन 81

'वेदेषु पौरुषं सूक्तम्' । पुरुषसूक्त वेद का प्रधान सूक्त है। नारायण ही पुरुष सूक्त के प्रतिपाद्य देव हैं। नारायण में भूत, वर्तमान, भविष्य सदा स्थित रहता है—**'पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्'** ।

समाधान-सुमन 82

भगवान् के सभी लीलावतार प्राणियों के कल्याणार्थ होते हैं—**'सर्वे लीलावतारस्ते भूतानां भूति हेतवः'** ।

समाधान-सुमन 83

अक्षर प्रणव इन्द्रियाँ मन धर्म काल यज्ञ सत्य ऋतु आदि के प्राण नारायण हैं—**'त्वं शब्दयोनिः जगदादिरात्मा प्राणेन्द्रियद्रव्यगुणः स्वभावः....'** ।

समाधान-सुमन 84

भृगु जी कहते हैं कि भगवान् सत्वगुण वाले होने के कारण ब्राह्मणों से पूज्य हैं तथा रजोगुणी एवं तमोगुणी होने के कारण ब्रह्मा, शिव अपूज्य हैं।

समाधान-सुमन 85

दैवी स्वभाव वाले भक्त भगवान् को अनादि एवं अविनाशी समझकर अनन्यभाव से भजते हैं—

महात्मनः तु मां पार्थ दैवी प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्ति अनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ।।
(गी० ९.१३)

समाधान-सुमन 86

भगवान् के शरणागत अनन्य भक्त देव पितृ एवं ऋषि ऋण से मुक्त हो जाते हैं—**'...सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्यं कर्त्तुम्'** ।

समाधान-सुमन 87

भगवान् से ही सभी वस्तुओं की पूर्ति होती

है—**'ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः'** ।

समाधान-सुमन 88

देवताओं की पूजा का निषेध होने से मन्दिर में उन लोगों के साथ रहने से भगवान् भी अपूज्य हो जाते हैं—**'अन्यालये हरिं दृष्ट्वा देवतान्तरसंसदि न अर्चयेत् न प्रणमेत् च तीर्थसेवा विर्वजयेत्'** ।

समाधान-सुमन 89

भगवान् अनन्यभक्तों से अपनी सेवा स्वयं स्वीकार करते हैं।

समाधान-सुमन 90

सांसारिक सबकुछ त्यागकर अनन्य भाव से भजने वाले भक्त को स्वयं भगवान् जन्म मृत्यु से पार करते हैं—

विसृज्य सर्वान् अन्यान् च मामेव विश्वतोमुखम् ।
भजन्ति अनन्या भक्त्या तान् मृत्योः अतिपारये ।।
(भा० ३.२५.४०)

समाधान-सुमन 91

भगवान् का विराट रूप में प्रवेश करने के ही कारण महदादि प्रकृति सृष्टि रूप में विद्यमान है—**'क्षेत्रज्ञः प्रविशत् यदा...। विराट तदैव पुरुषः सलिलात् उदतिष्ठत्'** (भा० ३.२६.७०)।

समाधान-सुमन 92

भक्त के अपकार या दोष को भगवान् आत्मवत् भाव के कारण स्मरण नहीं करते—**'न स्मरति अपकाराणां सतम अपि आत्मवत्तया'** ।

समाधान-सुमन 93

देवता भी मनुष्य के शरीर से ही मुक्ति पा सकते हैं।

समाधान-सुमन 94

भगवान् भक्तों के लिये कल्पवृक्ष हैं। ऐसा अन्य कोई नहीं है।

समाधान-सुमन 95

देखि दोष कबहुँ न उर आने ।
सुनि गुन साधु समाज बखाने ।।
(मानस, अयो० २९८.२)

दोष को देखकर भी उस पर ध्यान नहीं देते; परन्तु सुने हुए गुण की चर्चा साधु निरन्तर करते हैं।

समाधान-सुमन 96

परमात्मा सबों के शरीरी हैं अर्थात् वही सब में प्राणरूप में रहते हैं—**'यस्यात्मा शरीरम् । यस्य प्रकृतिः शरीरम्'** ।

समाधान-सुमन 97

भगवान् सबके आधार हैं—**'सर्वाधारमच्युतम्'** ।

समाधान-सुमन 98

सबके उद्धार भगवान् करते हैं—**'तेषामहं समुद्धर्ता'** ।

समाधान-सुमन 99

सभी सम्बन्धों को मानते हैं—**'सर्वं यदेव नियमेन मदन्वयानाम्'** (स्तोत्ररत्न आलवन्दार ५)।

समाधान-सुमन 100

भगवान् माता पिता के समान हितैषी है—**'सुहृत्प्रियवत् चरति'** ।

समाधान-सुमन 101

भगवान् बुद्धियोग देते हैं—**'ददामिबुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते** (गी० १०.१०)।

समाधान-सुमन 102

भगवान् परम गति अर्थात् मोक्ष देते हैं।

समाधान-सुमन 103

भगवान् सभी वस्तुओं के आदि, मध्य तथा अन्त हैं—**'आदावन्ते च मध्ये च'** ।

समाधान-सुमन 104

एक कार्य में से दूसरे कार्य में भी स्थित रहते हैं—**'सृज्यात्सृज्यं यदन्वियात्'** ।

समाधान-सुमन 105

सब के नाश होने पर नारायण ही शेष रहते हैं—**'यच्छिष्येत् तदेव सत्'** ।

समाधान-सुमन 106

सबों के प्रकाशक हैं—**'यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्'** (गी० १५.१२)। **'सब कर परम प्रकाशक जोई'** (मानस, बा० ११६.३)।

समाधान-सुमन 107

भगवान् एक भी किसी प्रकार की सेवा से प्रसन्न होने वाले हैं।

समाधान-सुमन 108

भगवान् एवं उनका स्मरण ही वास्तविक सम्पत्ति है—

विपदोनैव विपदः सम्पदोनैव सम्पदः।
विपद्विस्मरणं विष्णोः सम्पत् नारायणस्मृतिः।।

रामेन्दु शून्याशिवमिते च वर्षे माघे सिते पन्नगभौमवारे।
प्रीत्यै परेशस्य जनस्य भूत्यै एतस्य शास्त्रस्य हि आविरासीत्।

संवत् २०११ माघ शुक्ल आश्लेषा मङ्गलवार को भगवत् प्रीति तथा लोक कल्याण हेतु शास्त्र सम्मत इस पुस्तक की रचना हुई।

आर्त्ता विषण्णाः शिथिलाश्च भीताः घोरेषु च व्याधिषु वर्तमानाः।
सङ्कीर्त्य नारायण शब्दमात्रं विमुक्त दुःखा सुखिनो भवन्तु।

(नारायणाष्टकम् ८)

नारायण शब्द मात्र के सङ्कीर्तन से मानव समस्त भय, व्याधि तथा दुःख से छुटकारा प्राप्त करता है।

आश्रम समाचार

स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज की जयन्ती

फाल्गुन-शुक्ल-त्रयोदशी दिन शुक्रवार दिनाङ्क १०-०३-२०१७ को परमपदी अनन्तश्री विभूषित स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज की १५१वीं जयन्ती हुलासगंज, सरौती, मेहन्दिया, काशी, जगन्नाथपुरी, वरपा आदि अनेक स्थानों पर भक्तों द्वारा पूर्ण हर्षोल्लास के साथ मनाया गया। इस अवसर पर भक्तों ने अपने स्तर से विविध कार्यक्रमों को आयोजित किया। श्रीलक्ष्मी नारायण मन्दिर हुलासगंज में स्थान, विद्यालय, महाविद्यालयीय परिवार एवं श्रीवैष्ण भक्तों ने स्वामी जी की जयन्ती मनायी, जिसमें विमान-यात्रा द्वारा नगर भ्रमण का दृश्य अत्यन्त आह्लादकारी रहा। परमपूज्य वर्तमान स्वामी जी महाराज का विशेष कार्यक्रम वरपा में पूर्व से निर्धारित था। स्वामी जी महाराज की स्वयं भी उपस्थिति के कारण एवं यज्ञ के कारण स्वामी जी महाराज की जयन्ती में उपस्थित भक्तों की संख्या अत्यधिक थी। इस अवसर पर विमान द्वारा नगर भ्रमण के कार्यक्रम के अतिरिक्त स्वामी जी महाराज द्वारा रचित भक्तिपूर्ण गेयपदों का गान कुशल कलाकारों द्वारा सम्पन्न हुआ। परमपदी अनन्तश्री विभूषित स्वामी पराङ्कुशाचार्य जी महाराज द्वारा रचित पुस्तकें 'अर्चागुणगान' आदि के दार्शनिक पक्षों पर वर्तमान आचार्य अनन्तश्री स्वामी रङ्गरामानुजाचार्य जी महाराज ने प्रकाश डाला। अर्चागुणगान के प्रथम पद्य 'श्रीनिवास प्रताप दिनकर...' का भाव स्पष्ट करते हुए श्रीनिवास का अर्थ से लेकर 'प्रणतपाल कृपालु ही के...' तक के सभी पद्यों का भाव स्पष्ट करते हुए भक्तों को भाव-विभोर कर दिया। इस पद्य में श्री का अर्थ लक्ष्मी और लक्ष्मी जी भगवान् के हृदय में निवास करती हैं, अतः श्रीनिवास अर्थ सार्थक हुआ, भगवान् के भगवान् कैसे माला बने, भाष्यकार रामानुज स्वामी श्वसुर और गुरु कैसे हुए आदि इस पद्य के गूढ़भावों को इतने सरल व सहजता के साथ भक्तों के समक्ष उपस्थापित किया कि सभी भक्त भक्तिभाव से मुग्ध हो गए। स्वामी जी की प्रवचन की विशेषता यह होती है कि वे सरल व सहज रूप में कठिन से कठिन दार्शनिक पक्षों को जन सामान्य को हृदयंगम करा देते हैं, फिर भी सरलता के क्रम में दार्शनिक भावों की अक्षुणता विद्यमान रहती है।

स्वामी जी ने परमपदी स्वामी जी महाराज द्वारा वर्णित भगवान् के विभिन्न स्वरूपों पर प्रकाश डाला। भगवान् के शेष जी कब, कहाँ, किस रूप में आये हैं, इसका वर्णन निम्नलिखित पद्यों से किया गया है—

लक्ष्मीनाथ के आसन भवन बनके रहे पहले ।
प्रभु सो राम सीता के, सुनायक भी कहाये हैं ।।
गोकुल कृष्ण के भैया, जो वलदाउ कहाये हैं ।
प्रभु यह घोर कलि में आ, जगत गुरु ही कहाये हैं ।।
पुनः अवतार धर करके, सुजामाता कहाये हैं ।
सुभगवत धर्म को सब विध, दशो दिशि में बढ़ाये हैं ।।
पुनः सो दिव्य तनु धर के गोवर्धन को पधारे हैं ।
सुवृज में बास कर सबविध सुधर्मों को चलाये हैं ।।
श्रीराजेन्द्र सूरी बन, अनेकों देश को तारे ।
प्रभु आकर मगह में दीन के स्वामी कहाये हैं ।।

भाव यह है कि श्रीवैकुण्ठाधिपति श्रीलक्ष्मी-नारायण के सिंहासन बनकर शेष जी सदा वैकुण्ठ में रहते हैं। वे ही जब भगवान् भूतल पर सीता-राम रूप में आये तब उनके सब प्रकार की सेवा के लिए लक्ष्मण रूप में अवतरित हो गये। जो श्रीराम के 'वहिः प्राणइवापरः' के अनुसार बाहर में द्वितीय प्राण के समान थे। वे ही शेष ज ी गोकुल में श्रीकृष्ण के बड़े भाई 'बलदेव' नाम से प्रसिद्ध हुए। वे ही शेषजी घोर कलियुग में जगत् गुरु श्री रामानुजाचार्य के रूप में आये।

प्रथमोऽनन्त रूपश्च द्वितीयो लक्ष्मणस्तथा।
तृतीयो बलरामश्च कलौ रामानुजो मुनिः ।।

वे ही अवतार लेकर 'जामाता' नाम से प्रसिद्ध हुए। अवतार लेकर उन्होंने ही सर्वत्र भगवत् धर्म का प्रचार-प्रसार किया। गोवर्धन पर्वत पर रङ्गदेशिक (रङ्गाचार्य) रूप में आकर उत्तर भारत में श्रीवैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार उन्होंने किया है। उन्होंने व्रज के वृन्दावन में श्रीरङ्गमन्दिर बनवाकर भगवान् को स्थापित किया। उन्हीं के शिष्य श्रीराजेन्द्रसूरि जी ने मगध में आकर तरेतपाली में स्थान बनाकर श्री वैष्णवधर्म को बढ़ाया, जो रङ्गदेशिक स्वामी के विग्रह माने गये हैं। उनसे मगध में असंख्य दीनों का उद्धार हुआ।

अन्त में कार्यक्रम की समाप्ति परमपदी स्वामी जी की आरती एवं अर्चना से सम्पन्न हुयी।

शेषावतार भाष्यकार स्वामी रामानुजाचार्य जी महाराज की जयन्ती

वैशाख शुक्ल पञ्चमी सोमवार १-५-२०१७ को शेषावतार भाष्यकार जगद्गुरु श्रीरामानुजाचार्य जी की सहस्राब्दी जयन्ती हुलासगंज, सरौती, मेहन्दिया आदि स्थानों पर धूम-धाम से मनायी गयी। लक्ष्मीनारायण मन्दिर हुलासगंज में अनन्तश्री विभूषित स्वामी रङ्गरामानुजाचार्य जी महाराज के आचार्यत्व में जयन्ती मनायी गयी। इस अवसर पर पूज्य स्वामी जी महाराज ने विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त (तत्त्वत्रय–ब्रह्म, जीव और माया) की सत्ता का सविस्तार उपदेश दिया। स्वामी जी ने कहा कि शेषावतार श्रीरामानुज स्वामी जी ने ब्रह्मसूत्र और गीता पर सविस्तर भाष्य लिखा है। यतिराज स्वामी जी ने अपने भाष्य के माध्यम से ब्रह्म को निर्गुण और सगुण-स्वरूप की विशद् चर्चा की है। ब्रह्म के निर्गुण होने का तात्पर्य प्राकृत गुण (सत्त्व, रज, तम) से रहित होना होता है तथा सगुण का भाव दिव्य गुण से विभूषित होना होता है। भगवान् अनन्त कल्याण गुणों एवं दिव्यविभूतियों से युक्त हैं। इसीलिए सगुण है, अतः भगवान् को निर्गुण एवं सगुण स्वरूप से युक्त मानना चाहिए। भगवान् जीव के स्वामी हैं जीव उनका दास है। जिस प्रकार लोक व्यवहार में स्वामी की कृपा बिना सेवक को कुछ भी प्राप्त नहीं होता, उसी प्रकार जीव को भक्तिरूपी सेवा से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है।

नृसिंह भगवान् की जयन्ती

वैशाख शुक्ल चतुर्दशी भौमवार ९-५-१७ को भगवान् नृसिंह जी की जयन्ती लक्ष्मी-नारायण मन्दिर, हुलासगंज में मनायी गयी। इस अवसर पर श्रीमद्भागवत का पाठ तथा स्वामी जी महाराज द्वारा नृसिंह भगवान् के प्राकट्य के मूल रहस्यों पर प्रवचन, भगवान् के कोपशमन हेतु शीतल पदार्थों का भोग समर्पण का कार्य सम्पन्न हुआ। अन्त में अर्चना के उपरान्त प्रसाद वितरण से कार्यक्रम पूर्ण हुआ।